# कमलेश्वर

# लौटे हुए मुसाफिर

# लौटे हुए मुसाफिर

कमलेश्वर

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

**लोकभारती प्रकाशन**
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

●



●

तृतीय संस्करण :
मार्च १९८७

●

**लोकभारती प्रेस**
१८, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

मूल्य : ३०.००

# भूमिका

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिन लेखकों ने कथा-साहित्य को नयी दिशा प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया उनमें कमलेश्वर भी एक नाम है। प्रेमचन्द के बाद हिन्दी-कथा-साहित्य जन-संस्पर्श से कट गया था। कल्पना और मनोविज्ञान की सँकरी गली में भटक जाने के कारण अपने समकालीन समाज की सच्चाइयों से दूर पड़ गया था। जीवन-संघर्ष की मुख्यधारा से कट जाने के कारण निर्जीव और एकांतिक हो गया था। प्रेमचन्द की समाजोन्मुखी धारा से उसे फिर से जोड़ने और समकालीन जीवन-संदर्भों के कथानकों को मुख्य कथा-धारा में ले आने का कार्य स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नये लेखकों ने प्रारम्भ किया।

प्रमुख बात यह हुई कि देश के विभिन्न क्षेत्रों से आये लेखकों ने अपने स्थानीय कथानकों को कहानियों और उपन्यासों में स्थान दिया। इस तरह हिन्दी कथा-साहित्य में पहली बार कथा-वस्तु का विस्तार हुआ।

कथा-वस्तु के विस्तार के साथ नये-नये अपरिचित चरित्र, उनका व्यक्तिगत जीवन, उनके अपने क्षेत्र की विशेष भाषिक शब्दावली और उनके विशिष्ट जीवनानुभवों से हिन्दी कथा-साहित्य में एक नयी साथ ही ऐसी ताजगी आयी जो इससे पहले के साहित्य में पहले कभी देखी नहीं गयी थी।

कथोपकथनों द्वारा भाषा के क्षेत्र में इतने और ऐसे नये शब्द आये जिनसे हिन्दी भाषा का खजाना भर गया। जीवन के विभिन्न स्तरों से अपनी वर्गीय विशेषताओं वाले सर्वथा नये पात्रों से हिन्दी कथा-साहित्य का आँगन शोभित हो उठा। खेतों-खलिहानों में काम करने वाले मजदूर, अन्यायी सामन्त, सताये हुए भूमिहीन किसान, परम्पराग्रस्त बूढ़ी स्त्रियाँ, नयी-नयी आकांक्षाओं से भरे हुए युवक और समाज की धार्मिक कुंठाओं से ग्रस्त पुराने और बूढ़े चरित्र अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं के साथ इस

कालखंड की कहानियों में सहज ही पहचाने जा सकते हैं। अज्ञेय, जैनेन्द्र आदि के कल्पना प्रसूत, आत्मज्ञ चरित्रों की पहचान इन चरित्रों के सामने धूमिल पड़ती गयी।

परिदृश्यगत विशेषताओं के नाम पर जहाँ इसके पहले के कथानकों को किसी भी देश अथवा समाज से जोड़ लिये जाने की सुविधा थी, वह इस कालखंड में समाप्त हो गयी। ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से समकालीन सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों के संदर्भ में कथानकों के मूल्यांकन की परम्परा शुरू हुई। शासन कैसा है, वह किस वर्ग की सेवा करता है। शेष गरीब किसान-मजदूर शोषण की चक्की में किस तरह पिस रहे हैं, किस तरह जनतंत्र के नाम पर उन्हें दबाया जा रहा है और किस तरह गरीब और भी गरीब तथा अमीर और भी अमीर होता जा रहा है—इसे दर्शाने वाले कथानकों ने अपने समय के समाज का सांस्कृतिक इतिहास लिखना शुरू कर दिया। कुल मिलाकर हिन्दी का कथा-साहित्य सामाजिक यथार्थ की मान्यताओं का प्रतीक बन गया और प्रेमचन्द की परम्परा का एक नया और सशक्त विकास नये-सिरे से प्रारम्भ हुआ।

## कमलेश्वर का स्थान

कमलेश्वर का जन्म उत्तरप्रदेश के पश्चिमी इलाके के मैनपुरी जिले में हुआ था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले जिला मुख्यालयों के साथ जो एक कस्बाई संस्कृति उभरी थी उसे बड़ी खूबी से इन्होंने अपनी रचनाओं में उभारा। 'कस्बे का आदमी' और 'राजा निरवंसिया' नामक इनके कहानी-संकलन, कस्बाई जीवन की नन्हीं-नन्हीं घटनाओं, धूल भरी टूटी-फूटी सड़कों और अंधकारमय गलियों में भटकते, भूखे, नंगे बच्चों के अविस्मरणीय चित्रों से भरे पड़े हैं। जीवन से इन पात्रों का अटूट लगाव, इनकी क्षुद्रता और इनकी महानता के अनेक ऐसे वर्णन कमलेश्वर की रचनाओं में देखने को मिलते हैं, जिन्हें इसके पूर्व हिन्दी साहित्य में नहीं पाया जा सकता।

इस तरह कथा-भूमि को विस्तार और भाषा को नया संस्कार देने में कमलेश्वर का महत्त्वपूर्ण योगदान है। लेकिन एक बात जो सर्वोपरि उल्लेखनीय है, वह है कथानक में वर्णित जीवन को देखने की दृष्टि।

साम्प्रदायिकता, अन्धविश्वास और परम्परागत रूढ़वादिता के सर्वथा विपरीत कमलेश्वर एकता, प्रगति और समानता के सिद्धान्तों के हामी हैं। शायद यही कारण है जिसने उनकी रचनाशक्ति को गति और महत्ता प्रदान की है।

कमलेश्वर का उपन्यास 'लौटे हुए मुसाफिर' उनकी इन्हीं विशेषताओं के कारण महत्वपूर्ण है। ऊपर कही गयी बातों का तात्पर्य मात्र इतना है कि इस उपन्यास के पाठक उपन्यास में प्रवेश का सही मार्ग अपना सकें। क्योंकि उपन्यास प्रबंध लेखन नहीं है जो उपन्यासकार का मन्तव्य, पाठक को सीधा संप्रेषित कर दे। वह काव्य अथवा नाटक से भी भिन्न साहित्य के लिए एक नयी विधा है। इसलिए आइए सबसे पहले यही देखें कि उपन्यास की क्या परिभाषा है।

## उपन्यास की परिभाषा

हिन्दी में कहानी की भाँति उपन्यास की परिभाषा को लेकर भी विवाद हुआ। पं० किशोरी लाल गोस्वामी इसे पूर्णतः भारतीय विधा मानते हैं और इसके सूत्र 'दशकुमार चरित', 'वासवदत्ता', 'श्रीहर्ष चरित' अथवा 'कादम्बरी' जैसी प्राचीन रचनाओं से जोड़ते हैं। लेकिन ब्रजरत्न-दास और बाबू गुलाब राय इसे अंग्रेजी के 'नावेल' का ही पर्याय मानते हैं। उपन्यास का शब्दार्थ करते हुए पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी बताते हैं कि 'उप' का अर्थ है निकट तथा 'न्यास' का रखना। लेखन अपने मन की कोई बात अथवा कोई नया मत पाठकों के सामने रखना चाहता है। यह पुरानी परम्परा के विपरीत अंग्रेजी के 'नावेल' शब्द के ही निकट जान पड़ता है।

इस तरह उपन्यास शब्द को लेकर जो भी बहसें चलीं अथवा उसकी जितनी भी परिभाषाएँ दी गयीं, उन सभी में समान रूप से अंग्रेजी के 'नावेल' शब्द का पर्याय खोजने का प्रयत्न प्रमुख था। इसके अतिरिक्त जो रचनाएँ इस नाम के अंतर्गत सामने आयीं, वे स्वयं अंग्रेजी के 'नावेल' की परिभाषा के ही निकट पड़ती हैं। लेखक के अनुभव संसार से जुड़ी हुई कथा-रचना को उपन्यास कहने और उसे अंग्रेजी 'नावेल' से भिन्न

मानने का कोई औचित्य नहीं जान पड़ता। रालफाक्स उपन्यास को सम्पूर्ण मनुष्य को समझने और अभिव्यक्त करने वाला गद्य रूप मानते हैं। कैम्पवेल नामक अंग्रेजी साहित्य के मनीषी उपन्यास को मानव-चरित्र का उद्‌घाटन करने वाला सृजनात्मक गद्य कहते हैं। उपन्यासकार प्रेमचन्द का मत तो और भी सटीक है। वे कहते हैं, मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मुख्य तत्व है।

## उपन्यास के मुख्य उपांग

किसी भी उपन्यास के क्रमशः १—कथानक, २—पात्र अथवा चरित्र, ३—शैली, ४—देश-काल तथा ५—जीवन दर्शन जैसे मुख्य तत्त्वों के विवेचन द्वारा उसके रचनात्मक प्रारूप में प्रवेश किया जा सकता है। यद्यपि आज के नये उपन्यास की व्याख्या के लिए यह एक मोटा विभाजन माना जाता है, फिर भी उपन्यास के सामान्य विद्यार्थी के लिए इन मुख्य उपांगों पर दृष्टि रखना, उपन्यास में प्रवेश के लिए सहायक होगा।

कथानक : समस्त सामाजिक गतिविधियों में किसी मनुष्य के क्रिया-कलाप, सुख-दुख, आचार-विचार द्वारा जो एक कथानक ताना-बाना बनता है, उसे कथानक कहा जाता है। प्रायः उपन्यासकार अपने जीवनानुभवों द्वारा मनोरंजन चरित्र-चित्रण अथवा उद्‌घाटन के लिए या किसी वैचारिक नवीन दृष्टि के लिए कथा का जो बुनियादी ढाँचा बनाता है; उसे कथानक कहते हैं। इसी ढाँचे पर उपन्यास का भवन निर्मित होता है। घटनाओं का विकास, कथोपकथन और पात्रों का यथायोग्य चुनाव यदि कथानक को विश्वसनीय और सहज बना पाते हैं तो उपन्यास को सफल माना जाता है। तात्पर्य यह कि कथानक ही वह मूलभूत तत्त्व है जिस पर उपन्यास की सृष्टि टिकी रहती है। कथानक जितना ही वास्तविक जीवन के अनुरूप होगा, उपन्यास उतना ही विश्वसनीय और ग्राह्य होगा।

ध्यानपूर्वक देखा जाए तो कथानक ही उपन्यास के अन्य तत्वों का नियमन करता दिखाई देता है। मसलन भाषा-शैली से लेकर जीवन-दृष्टि तक कथानक का निर्देश बना रहता है। उपन्यास के अन्य सारे तत्वों

का कथानक के अनुरूप होना उपन्यास की विश्वसनीयता के लिए पहली शर्त है।

## चरित्र-चित्रण

किसी भी कथानक का मनुष्य विहीन होना प्रायः असम्भव है। घटनाओं के विकास ही नहीं, उसके अस्तित्व के लिए भी आदमी की उपस्थिति किसी कथानक में अवश्यम्भावी है और आदमी के साथ उसका व्यक्तित्व परिवार, समाज, राजनीति और विचार कथानक में प्रवेश पाते हैं। इसी व्यक्ति को उन्यास में चरित्र कहा जाता है। अर्थ मात्र मानव इकाई से नहीं, उसके समग्र चरित्र से है। इसी समय व्यक्ति को सामाजिक संदर्भों से जोड़कर उपन्यासकार अपनी रचना द्वारा जीवन-सत्यों की पहचान कराता है। चरित्र काल्पनिक अथवा यथार्थ अनुभव के क्षेत्र से लिये हुए हो सकते हैं। कई बार उपन्यासकर कल्पना और यथार्थ को मिश्रित कर एक तीसरा चरित्र तैयार करता है और उसे जीवन-सत्यों के उद्घाटन के लिए सोपान की तरह प्रयुक्त करता है। चरित्र का आदर्शीकरण प्रायः इसी संयोजन के अन्तर्गत आता है। लेखक अपनी कुशलता से ऐसे चरित्र निर्मित कर देता है जो व्यक्ति मात्र होते हुए अपने वर्ग के तमाम चरित्रों का प्रतिनिधित्व करने लगता है। इसी को अंग्रेजी में 'टाइप' कहते हैं। गोदान का 'होरी' ऐसा ही एक 'टाइप' चरित्र है। शील-निरूपण अथवा चरित्रांकन द्वारा ही लेखक अपने समय और अपने विचारों को उपन्यास द्वारा व्यक्त करने में समर्थ हो पाता है।

## शिल्प-शैली

उपन्यास अथवा कथा के कहने के ढङ्ग को शैली कहा जाता है। लेखक खुद चुनता है कि वह कहानी को किस तरह कहे जिससे उसका मन्तव्य पाठक तक अधिक प्रभावशाली होकर पहुँच सके। मसलन वह उपन्यास की कथा को आत्मचरितात्मक शैली में कह कर कथा को अधिक प्रभावी बना सकता है। 'शेखर : एक जीवनी' इसका एक सफल उदाहरण है। वह कथा को चरित्रों के नाम से अध्याय बाँट कर

भी कह सकता है और कहानी के पूरे संदर्भ को एक लड़ी में पिरो सकता है। स्मृति-विधान के उपभोग द्वारा कभी कथा को अन्त से शुरू करके पूरी कहानी को बयान किया जाता है। लेकिन देखा यह जाता है कि दुनिया के सारे बड़े उपन्यास इतिहास की तरह वस्तु-शैली में ही कहे गये हैं। इस शिल्प में उपन्यास का अन्तर विस्तार दूर-दूर तक फैलाया जा सकता है। लेखक अपने को पूरी कथा से अलग रखकर वस्तुगत दृष्टि अपना सकने में अधिक सुविधा महसूस करता है। पत्र और डायरी के प्रारूप को भी कथा-संयोजन के लिए माध्यम बनाया जा सकता है। तात्पर्य यह कि उपन्यासकार कथा के स्वाभाव के अनुरूप शिल्प का विधान स्वयं निश्चित करता है और पाठक को आश्वस्त करता है कि वह जो कहानी कह रहा है, वह कपोल कल्पित नहीं वरन् जीवन की वास्तविकता का प्रतिरूप है।

## देश-काल

उपन्यासकार की जीवन-दृष्टि और शिल्पबोध की परीक्षा के लिये देश-काल का उपयुक्त प्रयोग एक कसौटी की तरह है। देश-काल के बोध के बिना कथा के काल्पनिक और बनावटी हो उठने की सम्भावना बढ़ जाती है। देश का अर्थ है कथा की स्थानीयता। मसलन कथा कहाँ घट रही है, उसका स्थान क्या है। स्पष्ट है कि जीवन में स्थान विशेष की एक विशेष भूमिका होती है। मसलन बम्बई नाम के चौपाटी पर घटने वाली घटना और उत्तर प्रदेश के किसी गाँव में घटने वाली घटना के स्वभाव, स्वरूप, वर्णन शैली, भाषा-संस्कार में काफी अन्तर होगा।

उपन्यासकार का यह दायित्व है कि वह पात्र के जीवन की स्थानीयता को उसकी भाषा, उसके ज्ञान, उसके वस्त्र और आचार-व्यवहार द्वारा स्पष्ट करे। पाठक को उस स्थान पर ले जाकर खड़ा कर दे, जहाँ की कथा कही जा रही है। कई बार पाठक उपन्यासकार की ऐसी ही विशेषता के कारण कह पड़ता है कि लेखक ने बड़ा ही 'सजीव चित्रण' किया है। स्थानीयता के इसी भौगोलिक संदर्भ की उपन्यास में देश और इतिहास बोध को काल कहा जाता है। काल का सम्बन्ध कथानक के समय से है। वैज्ञानिक दृष्टि के अनुसार समय के साथ सामाजिक परिस्थितियों

में परिवर्तन आता है, और उसी के अनुसार मानवीय चरित्र भी परिवर्तित होता रहता है। इतना ही नहीं, मानवीय सम्बन्धों की प्रकृति भी बदलती रहती है। आदमी को पता नहीं चलता लेकिन परिस्थितियाँ उसे निरंतर बदलती रहती हैं। उसका मनोविज्ञान, उसके विचार और उसकी प्रकृति पर समय का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

काल का अर्थ उस समय से है जिस समय का मनुष्य और समाज उपन्यास में वर्णित है। इसलिए काल-बोध के बिना श्रेष्ठ उपन्यास की रचना सम्भव नहीं। काल-बोध द्वारा ही उपन्यासकार अपने समय के यथार्थ का साक्षी बनता है और अपने औपन्यासिक चरित्रों द्वारा तत्कालीन मनुष्य की औसत सच्चाइयों को, मनोविज्ञान को तथा उस काल में उभरने वाले नये सामाजिक संदर्भों को पकड़ने और चित्रित करने में समर्थ हो पाता है। किसी भी उपन्यास की महानता का सबसे बड़ा प्रतिमान यह है कि वह अपने समय की सच्चाइयों का किस सीमा तक प्रतिनिधित्व करता है।

## जीवन-दर्शन

बिना जीवन-दर्शन के उपन्यास मात्र एक दृश्य-चित्र बन कर रह जाता है। उपन्यास जीवन के यथार्थ का चित्रण करने के बाद भी जीवन की प्रतिलिपि नहीं है। इसलिए अगर कोई उपन्यासकार जीवन जैसा है, उसे वैसा का वैसा चित्रित करने का प्रयत्न करता है तो उसे प्रकृतिवाद कहा जाएगा।

मसलन कई बार उपन्यासकार जीवन की कठिन और असम्भव स्थितियों में अपने पात्रों को इसलिये चित्रित करता है कि पाठक जीवन की उन परिस्थितियों को बदलने के बारे में सोचने के लिए मजबूर हों। कई बार वह संकेतों द्वारा जीवन और समाज को बदल देने की प्रेरणा उत्पन्न करता है। क्रांति के लिये उकसाता है।

प्रायः उपन्यास पढ़ने के बाद पाठक पर पड़े प्रभाव अथवा प्रेरणा के अनुसार लेखक के जीवन-दर्शन का विवेचन किया जाता है। हम स्पष्ट

देख पाते हैं कि लेखक ने अपनी जीवन-दृष्टि के अनुसार ही पात्रों का चयन किया है तथा कथानक चुना है।

वस्तुतः जीवन-दर्शन ही उपन्यास का वह सर्वव्यापी तत्त्व है जो कथानक, चरित्र, भाषा, शैली सबके संयोजन, सामञ्जस्य और संचालन में अपनी भूमिका निभाता है।

## हिन्दी उपन्यास : ऐतिहासिक विकास

हिन्दी उपन्यास की चर्चा लाला श्रीनिवास दास के 'परीक्षा गुरु' नामक उपन्यास से प्रारम्भ होती है। उपन्यासों के कई शोधार्थी श्रद्धाराम फुल्लौरी के 'भाग्यवती' तथा मुन्शी ईश्वरी प्रसाद के 'वामा शिक्षक' को प्रारम्भिक औपन्यासिक रचना मानते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उपन्यास विधा की ओर लोगों का ध्यान सबसे पहले आकृष्ट किया और स्वयं अनेक उपन्यासों का अनुवाद किया। 'पूर्ण प्रभाचन्द्र प्रकाश' नामक गुजराती उपन्यास का उनका अनुवाद काफी प्रसिद्ध हुआ। गोस्वामी राधाचरण, बाबू गदाधर सिंह, पं० रामशंकर व्यास आदि कतिपय लोगों ने भारतेन्दु जी की प्रेरणा और प्रोत्साहन के कारण अनुवाद का कार्य किया।

इसी काल में यानी उन्नीसवीं शताब्दी के आखिरी दो दशकों के भीतर कई मौलिक उपन्यासकार सामने आये। किशोरीलाल गोस्वामी के अलावा मन्नन द्विवेदी, लज्जाराम मेहता, ब्रजनंदन सहाय, देवकीनन्दन खत्री आदि के नाम प्रारम्भिक काल के प्रमुख उपन्यासकारों के रूप में लिए जाते हैं।

शिल्पगत कमजोरियों और भाषा के पुरानेपन के बावजूद इस काल के उपन्यासों की कथा-भूमियाँ समकालीन समाज की उथल-पुथल और हलचलों से भरी हुई हैं। ब्रह्मसमाज, आर्य समाज और प्रार्थना समाज द्वारा समाज-सुधार के कार्यों की ओर सारे देश की दृष्टि लगी हुई थी लेकिन ध्यान देने की बात है कि इस काल-विशेष में पाश्चात्य संस्कृति से प्रचारकों और प्रेमियों की भी कमी नहीं थी। बंगाल में तो जैसे मानसिक उद्वेलन की लहर दौड़ रही थी। विवेकानन्द देश-विदेश में भारतीय

संस्कृति, समाज-सुधार और पुनरुत्थान का प्रचार कर रहे थे। राना डे और केशवचन्द्र सेन के विचारों से जहाँ एक ओर भारतीय सुप्त समाज में नवजागरण की एक लहर दौड़ रही थी, गोखले और तिलक के राजनैतिक विचार लोगों को अंग्रेजी सरकार की गुलामी से मुक्त होने का संदेश दे रहे थे।

'५७ के मुक्ति संग्राम की विफलता, इस सारे सामाजिक-राजनैतिक मनोमंथन की पृष्ठभूमि में पराजय और हताशा का अमिट प्रभाव लिए विराजमान थी। लोग जैसे कुछ करने को उतावले हों लेकिन उन्हें कोई स्पष्ट मार्ग न मिल रहा हो। यह सारे मनोभाव उस काल के उपन्यासों में परिलक्षित किये जा सकते हैं। प्राचीन गौरव की भावना, सांस्कृतिक द्वन्द्व, प्रेम, स्त्री को लेकर विवाद, उसकी मुक्ति की चिन्ता आदि के प्रसंग ही इन उपन्यासों की विषय वस्तु हैं। अकेले उपन्यासकार देवकीनन्दन खत्री अपने तिलिस्मी उपन्यास लेखन में निमग्न दिखाई पड़ते हैं, जिनका प्रसिद्ध उपन्यास चन्द्रकांता संतति इस समय लिखे गये उपन्यासों में सब से ज्यादा लोकप्रिय हुआ। ऐसा लगता है जैसे कुछ सकारात्मक क्रिया-कलाप के अभाव की क्षतिपूर्ति इन तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासों से हो रही थी।

## प्रेमचन्द का आगमन

प्रेमचन्द का जन्म १८८० में बनारस के लमही ग्राम में हुआ। कहना न होगा कि उनका बाल्य-काल देश की उथल-पुथल भरी सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों के बीच ही गुजरा था। एक गरीब घर में पैदा होकर प्रेमचन्द को समाज के सामान्य आदमी की जिन्दगी को पहचानने और उसे पूरे सामाजिक, राजनैतिक वातावरण से जोड़कर अपनी दिशा निर्धारित करने में काफी समय लगा। देश में परिस्थितियाँ तेजी से बदलीं और मोहनदास करमचन्द गांधी जैसा नेता भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को नेतृत्व देने के लिए आगे आया। सहसा एक दिशा दिखाई पड़ने लगी। तभी १९१७ में रूस में क्रांति हुई, जिसने सारे संसार के सामने सामाजिक परिवर्तन का एक नया द्वार खोल दिया। इन्हीं कारणों से प्रेमचन्द ने एक

सहज आत्मविश्वास के साथ रचना के संसार में प्रवेश किया। १९१८ में उनकी पहली कृति 'सेवा सदन' प्रकाश में आयी।

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में देश का वातावरण तेजी से बदला और १९२० तक उन्होंने सारे देश में स्वतंत्रता आन्दोलन की एक लहर पैदा कर दी। प्रेमचन्द की दृष्टि इस निरंतर अग्रसर होते हुए जन-आन्दोलन पर टिकी हुई थी। उन्होंने अपने लेखन की प्रक्रिया तेज की। गाँव के गरीब, किसान-मजदूर उनकी रचनाओं में उभरने लगे। प्रेमचन्द की दृष्टि में आजादी के वे सच्चे दावेदार थे, जिन्हें ब्रिटिश हुकूमत ही नहीं, देश के शोषकों, कट्टर धार्मिकों, परंपरावादियों, सूदखोरों और अन्यायियों से भी मुक्ति दिलानी थी।

इस बीच उपन्यास के भाषा-शिल्प में तेजी से सुधार आ गया था और विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावन लाल वर्मा, जयशंकर प्रसाद, भगवती प्रसाद वाजपेयी, निराला आदि कतिपय लेखकों ने हिन्दी उपन्यास-साहित्य का संवर्धन किया।

इस काल के उपन्यासों में एक तरह का आदर्शवाद सर्वत्र दिखाई देता है। किसी प्रकार की सामाजिक, धार्मिक कुरीति का विरोध अथवा नारी की दुखद दशा का वर्णन इस काल के उपन्यासों का मुख्य विषय है। अकेले प्रेमचन्द ही ऐसे उपन्यासकार हैं जिनका विकास देश की सामाजिन-राजनैतिक गतिविधियों से निरन्तर जुड़ा रहा।

भारत में पूंजीवादी चेतना के आगमन के साथ व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता की चर्चा शुरू हुई। संयुक्त परिवार के टूटने की प्रक्रिया ने स्त्री-पुरुष संबंधों को एक नया आयाम दिया। मध्य वर्ग का विकास शुरू हुआ और इस नयी परिस्थिति को कथा-रूप देने के लिए जैनेन्द्र जैसा सिद्ध रचनाकार सामने आया। उनका 'त्यागपत्र' चर्चा का विषय बन गया। अज्ञेय की कहानियाँ फिर 'शेखर : एक जीवनी' के साथ हिन्दी में एक नयी धारा का सूत्रपात हुआ।

उधर सन् '३० तक आते-आते देश में मजदूरों की बड़ी-बड़ी हड़तालें शुरू हो गयीं और किसान आन्दोलन भी जोर पकड़ने लगे। रूसी

क्रांति से प्रभाव के कारण भारत में साम्यवादी, क्रांतिकारी विचारधारा का प्रचार होने लगा। कांग्रेस का मंच भी इससे अछूता न रहा। '३६ में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई और मुंशी प्रेमचन्द ने उसकी सदारत थी। क्रांतिकारी, समाजवादी दृष्टि के उपन्यास की माँग पूरी की यशपाल ने। उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों द्वारा क्रांतिकारी, समाजवादी विचारों का प्रचुर साहित्य लिखा। इस काल के अन्य प्रमुख लेखकों में अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

## स्वतंत्रता के बाद उपन्यास का विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद परिस्थितियाँ तेजी से बदलीं और देश के सामने अनेक ऐसी समस्याएँ खड़ी हो गयीं जो पहले कभी नहीं थीं। साम्प्रदायिक दंगों ने देश का हृदय ही फाड़ दिया। भयानक खून खराबों में आदमी की पहचान खो गयी। धार्मिक कट्टरता ने उसे जानवर बना दिया। देश की भयानक गरीबी, अशिक्षा और अन्धकार ने जैसे पूरे परि-दृश्य को ही गँदला कर दिया।

साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन का नारा देने वाले तथा व्यक्ति को केन्द्र में रख कर कलावादी रचनाकार कल्पना प्रसूत साहित्य लिखने के कारण जन-मानस से दूर पड़ते गये। संकट इतना गहरा हो गया कि संपूर्ण सामाजिक-राजनैतिक परिदृश्य के नये सिरे से मूल्यांकन की आव-श्यकता महसूस की जाने लगी। जन-जीवन की नयी सच्चाइयों की जाँच-पड़ताल शुरू की नयी कहानी ने। गाँव, शहर, कस्बा उनकी रचनाओं में उभरने लगे और उन्होंने अत्यन्त वस्तुपरक दृष्टि से समाज के विभिन्न क्षेत्रों के जीवन के यथार्थ को कथा का विषय बनाया। जैसे वे बता रहे थे कि—यह है, आज का सामाजिक परिदृश्य और उसका यथार्थ। बूढ़े, जवान, बच्चे, स्त्रियाँ अपने समूचे वर्गीय आधार के साथ इन रचनाओं में उभरने लगीं। गाँव के जीवन की ओर मार्कण्डेय के कहानी-संकलन 'पानफूल' और रेणु के उपन्यास 'मैला-आँचल' ने ध्यान आकृष्ट किया। 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' द्वारा राजेन्द्र यादव और 'जानवर और जानवर'

द्वारा राकेश ने अपने समय के यथार्थ से आँखें दो-चार कीं। कमलेश्वर ने 'राजा निरबंसिया' तथा 'कस्बे का आदमी' जैसी कहानियाँ लिख कर लोगों को बताया कि इस क्षेत्र विशेष में भी आदमी बसते हैं और दूसरों की तरह वे भी राष्ट्रीय जन-धारा के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इनका यथार्थ भी देश के यथार्थ से जुड़ा हुआ है।

सांप्रदायिक दुर्भावना ने किस तरह एक कस्बे के जीवन को खंड-खंड कर रखा है, किस तरह वहाँ का जन-साधारण उसकी कुण्डली में आबद्ध होकर विषाक्त हो उठा है—इसका सजीव चित्रण कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'लौटे हुए मुसाफिर' में करके जैसे कलावादियों और क्रांतिकारियों दोनों के सामने यह प्रश्न उठाया कि क्या इस प्रकार के सामाजिक परि-दृश्य में कला जीवित रह सकती है अथवा सांप्रदायिकता, अंधविश्वास और रूढ़ियों में डूबी ऐसी मानव-जाति क्रांति के कार्यभार ग्रहण कर सकती है?

## लौटे हुए मुसाफिर

स्वतन्त्रता के बाद, देश के राजनैतिक परिदृश्य में भारी परिवर्तन आया। एक लम्बी गुलामी के बाद आजादी का आगमन देश की जनता के लिए एक अभूतपूर्व परिवर्तन का काल था लेकिन सामाजिक जीवन में सांप्रदायिकता का ऐसा भयावह बीज बो दिया गया कि बेगुनाह लोगों की हत्या और खून के बीच इस महान अवसर की खुशियाँ मातम में डूब गयीं। देश का सारा सामाजिक परिदृश्य अंधकार और परस्पर अविश्वास से दूषित हो गया। मानवीय अस्मिता पर इस भयावह आघात की कथा ही 'लौटे हुए मुसाफिर' में कही गयी है। खूबी यह है कि कमलेश्वर ने कथानक के स्थान के लिए अपना कस्बा ही चुना, जिसकी एक-एक ईंट से वे परिचित हैं, जिसकी गलियों में उनका बचपन बीता है और मुक्त आकाश में उनके सपनों के पखेरू मनचाही उड़ाने भरते रहे हैं।

उपन्यास में हिन्दू और मुसलमान होने की अलगाववादी भावना से अलग एक मनुष्य की तरह सदियों से साथ-साथ हँसने, खेलने वाले, कंधे से कंधा मिलाकार चलने वाले और सुख-दुख में सदा साथ रहने वाले लोग

सहसा दो हिस्सों में बँट गये। एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गये। सहज आत्मीयता और दोस्ती की जगह परस्पर अविश्वास और घृणा ने ले ली।

ध्यान देने की बात है कि इतिहास के इस मोड़ पर मध्यवर्गीय जीवन की काल्पनिक, रोमानी भाव-भूमि पर अथवा व्यक्तिनिष्ठ क्रान्तिकारी मनोवेग को आधार बना लिखे जाने वाले उपन्यास समकालीन सच्चाइयों से बहुत दूर पड़ गये थे। नयी पीढ़ी के लेखकों ने वस्तुगत सच्चाइयों को सामने लाने के लिये समकालीन सामाजिक स्थितियों के कथानकों पर इसी कारण बल दिया। समाज की ओर लौटो, जनता के जीवन से जुड़ कर उसके जीवन के यथार्थ को समझो! इतना ही नहीं जन-जीवन को उसके समूचे आचार-व्यवहार के साथ कथा में चित्रित करो, जिससे उसकी सच्ची पहचान बने—इन मन्तव्यों के साथ जिस कथा-साहित्य की रचना हुई—उसका एक नमूना 'लौटे हुए मुसाफिर' है। कमलेश्वर अपनी ओर से बीच-बीच में राजनीतिक स्थितियों का वाचन करके कस्बे में जगह-जगह आपको घुमाते हैं। साइकिल बनानेवाले, मोची, छोटे-छोटे कारीगर और जीविका के लिए संघर्ष करनेवाले नवजवान, उनकी सीलनभरी कोठरियाँ, उनकी बातचीत, उनका विश्वास, उनका प्यार जैसे चलचित्र की तरह आपकी आँखों के आगे आते चले जाते हैं।

संदर्भगत सच्चाइयों की ओर उन्मुख इस नये कथा-आन्दोलन ने रूमानी यथार्थवाद को समूल नष्ट कर दिया। आलोचकों ने इस नई रचना-दृष्टि को समझने में देर की तो लेखकों में खुद अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में लिखना शुरू कर दिया। कमलेश्वर ने भी कहानी-समीक्षा पर एक पुस्तक प्रकाशित कराई।

वस्तुतः यथार्थवादी जीवन-दृष्टि के विकास के मार्ग में नये लेखकों का यह एक सुविचारित हस्तक्षेप था। वस्तुगत जीवन-संदर्भों से खिसक कर हिन्दी का यथार्थवादी कथा-साहित्य काल्पनिक और रोमानी हो रहा था। कलावादियों के वैयक्तिक अनुभूतिवाले उपन्यास रचना का व्यवसायी-करण कर रहे थे। पाठक में आलोचना अथवा विचार दृष्टि के विकास के बजाय भाव-विभोर होने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। खुद अपने जीवन

संदर्भों की ओर से उसकी दृष्टि हट रही थी। नये लेखकों के सशक्त हस्त-क्षेप ने उसे फिर मार्ग पर ला दिया।

इसलिए जब आप 'लौटे हुए मुसाफिर' पढ़ते हैं तो आपको लगता है कि समूचे अन्तर संघर्ष के बीच लेखक की ऐतिहासिक विकास की दृष्टि कहीं भी ओझल नहीं होती। संकुचित वैचारिक मतवाद से अलगाव और हीन प्रतिगामी प्रवृत्तियों का पर्दाफाश करने से वह कहीं भी नहीं चूकता।

उपन्यास के अन्त में कस्बा छोड़कर चले गये बच्चे बड़े होकर लौटते हैं और वह भी मजदूर बनकर। ध्वस्त सामन्ती अवशेष पर अब पाताल-वेधी कुओं की खुदाई शुरू हो गयी है। वे सब यहाँ काम करेंगे और अपने उन घरों की तलाश करेंगे जिनमें उनके माँ-बाप रहते थे। घर ढह गये हैं लेकिन वे नये सिरे से उन्हें बनाएँगे। 'नसीबन खुशी से रो पड़ी थी—वे सब बच्चे बशीर, बाकर, रमजानी, फत्ते वगैरह सब जवान हो-होकर लौटे थे।'

## कथानक

'लौटे हुए मुसाफिर' का कथानक कस्बे के पुराने जीवन के स्मृति-चित्रों से प्रारम्भ होता है। इस बस्ती में उस समय हिन्दू-मुसलमान किस तरह मिल-जुल कर रहते थे, किस तरह एक-दूसरे के दुख-दर्द में हिस्सा बटाते थे और किस तरह एक-दूसरे के लिए जान देते थे।

जब हिन्दुओं की बस्ती के ताजिये गुजरते थे, उन पर लोग गुलाब जल छिड़कते थे। औरतें अपने बच्चों को गोद में उठाये ताजियों के नीचे से गुजरती थीं और दौड़-दौड़ कर फेंके हुए मखानों को उठाकर धोती की खूट से बाँध लेती थीं।

जब रामलीला का विमान उठता तो मुसलमान औरतें अपने घरों के चिकों से बाहर आकर मूर्तियों के शृङ्गार का दर्शन करतीं। इतना ही नहीं, इस बस्ती के लोगों ने स्वाधीनता संग्राम में आगे बढ़कर हिस्सा लिया था और कई अंग्रेज अफसर जान से मारे गये थे। राधेश्याम और यूनुस दोनों पकड़े गये थे। सन् '४२ में चिकवों के लड़कों ने बड़ा ऊधम मचाया था और सरकार को परेशान कर दिया था।

लेकिन चिकवों की इसी बस्ती में जुम्मन साईं रहता था जिसकी कोठरी के सामने सदा धूनी लगी रहती थी। स्टेशन के कुली, इक्के-ताँगे वाले और फेरीवाले यहाँ जमते थे। जुम्मन साईं की यह कोठरी इस कथानक का केन्द्र है, जहाँ से कहानी का विस्तार होता है। यहीं बैठकर एक दिन इफ्तिकार कहता है, 'जिन्ना साहब किधर से मुसलमान हैं! सुना नमाज भी नहीं पढ़ते।'

साईं ने उसे रोका था, 'तुझे क्या लेना-देना है। तू अपना इक्का जोत।'

कथानक में एक मोड़ का यह मुख्य बिन्दु है। '४५ के बाद भीतर-भीतर साम्प्रदायिकता की आग सुलगने लगी थी, और धीरे-धीरे चिकवों की इस बस्ती में भूचाल-सा आ गया था। फिर तो सब कुछ बिगड़ गया दिली इमारतें ढह गयीं।

आजादी के साथ पाकिस्तान बना और बहुत से मुसलमान इस बस्ती को छोड़कर चले गये थे।

नसीबन की झोपड़ी पहले भी यहीं थी और पूरी बस्ती के उजड़ जाने के बाद भी साईं की कोठरी की तरह यहीं है। इसके अलावा ढहे हुए मकान और झोपड़ियों के निशान मात्र बच रहे हैं।

लेखक कथानक के इस चरम बिन्दु को स्थापित करने के बाद बस्ती की मौजूदा वीरानगी और तबाही की कहानी सिलसिलेवार बताता है। चरित्रों का विश्लेषण करता है जो इन हालात के लिए जिम्मेवार थे।

सर्कस के घोड़ों की जीन कसनेवाला सत्तार किसी दूसरे कस्बे का रहनेवाला था। साईं ही उसे यहाँ लाया था। वह कहीं से पाकिस्तान बनने की बात सुनकर आया था और सोचता था शायद गरीब मुसलमानों को वहाँ रोजगार की कमी नहीं रहेगी।

सत्तार ताश के कमाल दिखाता था। जादू जानता था लेकिन यहाँ आकर वह सलमा नाम की एक लड़की के सम्पर्क में आ गया जो विवाहित होते हुए भी परित्यक्ता थी और अस्पताल में एक डाक्टर के यहाँ काम करती थी।

साईं इस बस्ती का अभिभावक था। उसे यह बात पसन्द नहीं आयी।

उसने सत्तार को कोठरी से निकाल देने की धमकी दे डाली। क्योंकि पूछ ताछ के समय सत्तार और सलमा साईं की अवज्ञा कर बैठे। नसीबन ने साईं को समझाने की कोशिश की लेकिन साईं ने उसे झिड़क दिया।

सत्तार और सलमा का यह प्रेम-प्रसंग बस्ती में चर्चा का विषय बन गया था। तभी सलमा का पति मकसूद अलीगढ़ के एक राजनीतिक कार्य कर्ता के साथ बस्ती में वापस आ गया। सलमा ने सत्तार से मिलना-जुलना बन्द कर दिया और वह अस्पताल की नौकरी से भी निकाल दिया गया। लोग इसे साईं की करामात मानने लगे। लेकिन नसीबन जो साईं के समान ही इस उपन्यास की आधार चरित्र है, सत्तार से बात करती है। पता चलता है कि सत्तार सलमा की बेवफाई के कारण दुखी है। सत्तार सलमा को लेकर कहीं भाग जाना चाहता है लेकिन सलमा तैयार नहीं होती।

सलमा के पति मकसूद के साथ आया राजनीतिक कार्यकर्ता बसीर कस्बे में शान्ति देखकर दुखी है। उसे दुनिया की खबरों से अलग रहकर जीने वाले इन मुसलमानों पर तरस आता है। वह साईं की मदद से मस्जिद के अहाते में एक बैठक बुलाता है। बैठक में सलमा का पति मकसूद, राजनीतिक कार्यकर्ता का सभा में उपस्थित लोगों से परिचय कराता है। 'ये यासीन साहब हैं। मुल्लिम लीग में काम करते हैं! मुसलमानों की भलाई के लिए जगह-जगह घूमते हैं। जिन्ना साहब इन्हें इज्जत की नजरों से देखते हैं। आज ये आपसे कुछ बात करना चाहते हैं।

सत्तार भी कहीं से आकर इस सभा में शरीक होता है। वह किसी अंग्रेज अफसर के मारने के लिये नसीबन की दी हुई गुप्ती कमर में छिपाये रहता है।

इसी सभा में बस्ती के लोगों को यह बात समझाई जाती है कि कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है। आजादी के बाद हिन्दू राज कायम होगा। इसलिए मुसलमानों को देश के बँटवारे और पाकिस्तान की माँग का जमकर समर्थन ही नहीं करना चाहिए वरन् मरने-मारने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

ताँगेवाला इफ्तिकार और सत्तार दो ही ऐसे लोग थे जिनके मन में

संदेह था। इफ्तिकार मानता था कि असली लड़ाई तो गरीबी और अमीरी की है लेकिन यासीन ने उसे समझाया कि पाकिस्तान में सारे मुसलमान समान रूप से जीवन की सुविधाओं के हकदार रहेंगे।

सत्तार विचलित हो चला था। उसे लगता था, शायद पाकिस्तान बनने से उसके लिये जिन्दगी की नयी सीमायें खुल सकेंगी और उसी दिन उसने सलमा से मिलने का निर्णय ले लिया। जब वह अस्पताल पहुँचा और अपने पुराने मित्र रतन से सलमा के बारे में कुछ पूछना चाहा तो रतन ने उसकी ओर से मुँह मोड़ लिया।

इस बीच उसका पुराना मित्र रतन भाई राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में भरती हो चुका था। संघियों की खाकी नेकर, पेटी और काली टोपी पहने रतन को देखकर और गणनायक से उसकी बातें सुनकर, सत्तार का माथा फटने लगा।

फिर तो जैसे सब कुछ तेजी से बदलता गया। दोनों तरफ आग-सी लग गयी। अविश्वास का सर्प दिन पर दिन अपने फन फैलाता ही गया।

सत्तार के अलावा नसीबन की भी इस कथानक में एक बड़ी भागेदारी है। बल्कि देखा जाय तो वही इस उपन्यास की नायिका है। नसीबन बिना किसी झिझक और सोच-विचार के बच्चन नामक एक हिन्दू के अनाथ बच्चों की देखभाल करती है। सत्तार उससे पूछता है तो वह इन सारी बातों को हँस कर टाल देती है। उल्टे वह सत्तार को सलमा के बारे में सारी बातें बताती है।

सलमा का पति मकसूद एक विचित्र इन्सान है। शाम होते ही वह स्त्रियों की तरह सजता है। आँखों में काजल डालता है, गालों पर मस्सा बनाता है और बालों के छल्ले बनाकर, घंटों आइने के सामने खड़ा रहता है। यासीन के साथ उसके विचित्र सम्बन्ध हैं। मकसूद अपनी ही गिलास से उसे शराब पिलाता है। सलमा मक्के भून-भून कर पहुँचाती है, कलेजी के प्लेट ले जाती है।

इतना ही नहीं, नसीबन बताती है कि मकसूद आधी रात के बाद उसके पास पहुँचता है। वह बेचारी रो-रोकर तबाह हुई जा रही है और शर्म के मारे किसी से कुछ कह भी नहीं पाती।

सत्तार चुप हो जाता है लेकिन सोचता है कि पाकिस्तान बनेना तो वह सलमा को लेकर वहीं चला जाएगा। नसीबन से जब वह अपने मन का यह भाव बताता है तो नसीबन कहती है कि चले जाना भाई, यासीन तो पाकिस्तान बनवा ही रहा है। मतलब यह कि मकसूद और यासीन भी तो पाकिस्तान जाएँगे।

सत्तार हतप्रभ हो जाता है। नसीबन उससे कहती है, सलमा को यहीं ले आ और उससे बातें कर। वही होता भी है। लेकिन सलमा कहीं भी जाने से इनकार करती है। सत्तार जिद करता है तो बताती है कि उसके पेट में बच्चा है।

सत्तार जैसे कोई पहेली बूझ रहा हो। बच्चा, बच्चा कैसे हो सकता है मकसूद से। सत्तार समूल ध्वस्त हो जाता है और सलमा को घर भेज देता है। उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है। उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।

साईं की महफिल से आजाद हिन्द फौज के बारे में बहस होने पर सत्तार जिन्ना का विरोध करता है। मकसूद और यासीन के ललकारने पर उसकी पिटाई हो जाती है लेकिन वह मकसूद की नाक तोड़ देता है। लहू-लुहान सत्तार अपनी कोठरी में जा लेटता है लेकिन साईं उसी रात उसे कोठरी से बाहर निकलवा देता है। सत्तार सड़क पर आ जाता है। नसीबन उसे इस तरह देखकर अपने घर लाती है। इसी बीच बच्चों की आपसी लड़ाई में बच्चन के लड़के के पाँव की हड्डी टूट जाती है। नसीबन रात-दिन लगकर उसकी देखभाल करती है। उसे अस्पताल में लेकर पड़ी रहती है। मुसलमानों में इस बात को लेकर बड़ी बातें चलती हैं, लेकिन नसीबन जरा भी परवाह नहीं करती। साईं की धूनी के पास भी इस बात की बड़ी चर्चा होती है। यासीन कहता है, 'बच्चन उसे हिन्दू बनाने के चक्कर में है।'

देश के राजनीतिक घटना-चक्र के साथ (जो इस कथा के बीच-बीच में लेखक स्वयं बताता रहता है।) कथा का विस्तार और साम्प्रदायिक दुर्भावनाओं का उभार बढ़ता जा रहा था। तरह-तरह के भड़काने वाले पर्चे निकल रहे थे। पाकिस्तान की माँग जोर पकड़ती जा रही थी।

हिन्दू प्रतिक्रियावादियों ने मुसलमानों को नुकसान पहुँचाना शुरू कर दिया। मुसलमान नौकर या चपरासी नौकरी से निकाले गये। मतलब यह कि हिन्दू और मुसलमान होने के विचार ने सामाजिक व्यवहार में प्राथमिकता हासिल कर ली। संघी लोग जोर पकड़ते गये।

संघ के अधिकारियों ने पुनरुत्थानवादी भाषण देने शुरू कर दिये। मातृभूमि बलिदान माँगती है—जैसे नारे दिये जाने लगे। अलगाव और तनाव सीमा तक बढ़ गये। इफ्तिकार इक्केवाले को सवारियाँ मिलनी बन्द हो गयीं।

डाक बँगले में कोई अफसर आकर टिक गया। नसीबन और बच्चन का मामला तूल पकड़ने लगा। साईं की हरकतों को सत्तार खूब समझता था। वह बच्चन के साथ मिलकर सलमा को घर से भगा ले जाना चाहता था। लेकिन साईं ने इसी बीच सत्तार को पुलिस के चंगुल में फँसा दिया। सत्तार ने मार खा ली लेकिन चोरी कबूल नहीं की। बच्चन फरार हो गया। नसीबन उसके बच्चों को पालती-पोसती रही। सत्तार खुद नसीबन को देखकर आश्चर्यचकित था लेकिन नसीबन सत्तार की मदद से बच्चन को पुलिस के चंगुल से बचाये रही।

साईं का दबदबा चिकवों की बस्ती में बढ़ गया। मकसूद और यासीन भी बहुत व्यस्त हो गये। कई तरह के मौलवी-मौलाना मस्जिद में आकर भाषण देने लगे, मुसलमानों को भड़काने लगे।

साईं नसीबन के पीछे पड़ गया। बच्चन को पकड़ने के लिए नसीबन के घर पर पहरा रखा गया लेकिन सलमा चुपके से आई और नसीबन को भेद बता गयी।

बच्चन मल्लाहों के साथ मिलकर कच्ची शराब का धन्धा करता था। सत्तार जब बच्चन को आगाह करने वहाँ गया तो उसे यह जानकर बेहद दुख हुआ कि बच्चन नसीबन के बारे में वहाँ उलटी-सीधी बातें करता है। नसीबन उसकी बीबी के सारे गहने दबा कर बैठ गयी है।

सत्तार बेहद खिन्न होकर वहाँ से लौटा और बातों-बातों में सब कुछ नसीबन को बता दिया है। लेकिन नसीबन चुप रह गयी, कुछ नहीं बोली।

हिन्दू संघटन काफी तेजी में आ गए थे। संघी लाठियाँ लेकर बस्ती में घूम रहे थे और तरह-तरह की अफवाहें प्रचारित करके मुसलमानों को डरा-धमका रहे थे। इन लोगों ने एक दिन नसीबन की झोपड़ी घेर ली और बच्चन के बच्चों को माँगने लगे। नसीबन ने बड़ी कड़ाई से उनका विरोध किया और उन्हें अपने दरवाजे से भगा दिया।

सोलह अगस्त को बड़ा जुलूस निकला। यासीन मिया ने मुसलमानों को बताया कि हमारी संस्कृति, खान-पान और रीति-रिवाज हिन्दुओं से एकदम भिन्न हैं। इसलिए एक मुल्क में दोनों के साथ-साथ रहने का सवाल ही नहीं उठता। फिर तो उपद्रवों की बाढ़ आ गयी। दोनों कौमों का पूरी तरह अलगाव हो गया।

पाकिस्तान का ऐलान हुआ। मुसलमान खुशियाँ मनाने लगे, लेकिन नसीबन अपने घर में बैठी कुढ़ती रही। तभी बाहर कोई आदमी आया। उसने कहा कि बच्चन ने अपने बच्चों को बुलाया है। नसीबन ने सत्तार को पास बैठाकर मशविरा किया। तय पाया कि नहर के मोड़ पर बच्चन को बुलाकर बच्चों को सौंप दिया जाए। नसीबन ने उसके चाँदी के गहने और अपने कुछ रुपये भी बच्चन को देने के लिए सत्तार को दिया। सत्तार ने कहा भी कि रुपये तो तुम्हारे हैं लेकिन नसीबन ने बच्चन के कष्ट को ध्यान में रखकर सत्तार को समझाया और रुपये भेज दिये।

नसीबन उस दिन रात भर जागती रह गयी। किसी तरह नींद नहीं आयी तो उठकर चरखा कातने लगी।

कस्बे में भगदड़ मच गयी। लोग पाकिस्तान भागने लगे। चिकवों की बस्ती खाली हो गयी। नसीबन मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठी, वीरान बस्ती को देखती रही। दोपहर को सत्तार ने बताया कि वह भी कल जा रहा है। इफ्तिकार ताँगेवाले ने सत्तार को सूचना दी कि सलमा ने उसे बुलाया है। सत्तार चला गया तो इफ्तिकार ने नसीबन से पूछा कि तुम भी जा रही हो! नसीबन एक अर्थहीन हँसी हँस कर रह गयी।

सत्तार ने आत्महत्या कर ली। शेष सारे लोग चले गये। सारी बस्ती में बस दो ही चिराग़ रह गये—एक नसीबन का और दूसरा साईं का। दोनों कभी-कभी साथ बैठते, पुरानी बस्ती को याद करते—बीते

दिनों पर बातें करते और गुम-सुम उठकर अपने-अपने घरों को चले जाते ।

आजादी आ गयी थी और उसके साथ ही जीवन का नया संदेश भी आया था । सिंचाई के साधनों के विकास के लिए पाताल कुएँ बन रहे थे और नये-नये लोग वहाँ आने लगे थे । ऊसर आबाद हो रहा था । वहाँ चिमनियाँ लग गयी थीं जिनसे धुएँ निकलने लगे थे । एक नयी रौनक वातावरण को पुनर्जीवित कर रही थी । बाहर से मजदूर यहाँ के कारखानों में काम करने आने लगे थे ।

एक दिन शाम को ऐसे ही कई लोग आये और मस्जिद का पता पूछने लगे । नसीबन के बताने पर उन्होंने कहा, यहीं हमारे मकान थे । हम यहाँ पाताल कुओं में काम करने आये हैं ।

और मिनट भर में ही सारी पहचानें उभर आयीं । यहाँ से गए हुए लोगों के बच्चे अब कैसे-कैसे जवान होकर लौटे थे । मजदूरी करने आये थे ।

नसीबन की खुशियों का वारा-पार न था । वह उन्हें खिलाने-सुलाने की व्यवस्था में व्यस्त हो गयी ।

## चरित्र-चित्रण

कमलेश्वर के इस उपन्यास में चरित्र-चित्रण की बारीकियाँ ध्यान देने योग्य हैं । हिन्दी के कतिपय उपन्यासकारों में अपने चरित्रों को आत्मगत रूप देने और कथानक में उन्हें कठपुतलियों की तरह प्रयुक्त करने की जो कमजोरी प्रायः दृष्टिगोचर होती है, वह कमलेश्वर के इस उपन्यास में कहीं भी लक्षित नहीं की जा सकती । चरित्रों के जीवन संदर्भ और परं-परागत विकास को दृष्टि में रखकर उनको कथानक में प्रतिरोपित किया गया है । लेखक ने उन्हें अपनी आत्मिक आकांक्षाओं का कवच पहनाने का कहीं भी प्रयत्न नहीं किया है ।

किसी भी उपन्यासकार के लिए यह एक कठिन काम है । क्योंकि सामाजिक स्थितियों के विकास में उपन्यासकार की भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता । वह अपनी मान्यताओं को चारित्रिक रूपाकार देने

के लिए ही नहीं वरन् अपने दृष्टिकोण की परिणित के लिए भी रचनाकार्य में निमग्न होता है। यही कारण है कि अक्सर उसके आत्मगत हस्तक्षेप कथानक को बनावटी और अविश्वसनीय बना देते हैं। कुशलता तो उसकी इस बात में है कि वह अपनी वैचारिक सृष्टि के लिए कथा-संदर्भ और चरित्रांकन में ऐसी अन्विति उत्पन्न करे, जिसे अलग-अलग देख पाना सम्भव न रह जाय।

'लौटे हुए मुसाफिर' में कुछ ऐसी ही अन्विति है। नसीबन, सत्तार, सलमा, इफ्तिकार, साईं, मकसूद और यासीन जैसे चरित्रों को उनके सामाजिक संदर्भों से अलग नहीं किया जा सकता। जैसे वे उसी भूमि में उपज सकते थे, जहाँ कमलेश्वर ने उन्हें उपजाया है। नसीबन के चरित्र को किसी तर्क प्रक्रिया द्वारा विवेचित नहीं किया जा सकता। वह एक उर्द्ध सृष्टि है और प्राय: ऐसी सृष्टियों के लिए ही लेखक याद किया जाता है।

वैसे इस उपन्यास में पूरी बस्ती ही एक चरित्र है। उसकी चेतना, उसका कार्य व्यापार और उसकी भौगोलक संरचना—सब में एक ऐसी गुम्फित, आन्तरिक एकात्मकता है कि उसे एक सम्पूर्ण चरित्र के रूप में व्याख्यायित करने में कहीं भी बाधा उपस्थित नहीं होती। फिर भी यहाँ कुछ एक चरित्रों के बारे में अलग से विचार किया जा रहा है।

## नसीबन

नसीबन बच्चों वाली एक स्त्री है जो उपन्यास में आदि से अन्त तक लेखक की वैचारिकता और संवेदना की वाहक है। लेखक जात-पात धर्म-संप्रदाय, ऊँच-नीच, भय, छिपाव जैसी दुर्नीतियों का विरोधी है। वह मनुष्य की सदाकांक्षाओं, प्रेम और निर्भयता को प्यार करता है, वह त्याग को व्यक्तित्व का मुख्य गुण मानता है और यह सब मालूम होता है नसीबन के चरित्र से। आप यह सवाल पूछ सकते हैं कि कैसे ?

इस तरह कि नसीबन सारे उपन्यास में एक बार भी हिन्दू-मुसलमान प्रसंग पर बात नहीं करती। यहाँ तक कि वह इन बातों पर कान ही

नहीं देती। बस्ती में जब हिन्दू-मुसलमान तनाव सीमा पर पहुँच जाता है तो इस बात की चर्चा दोनों ओर होती है कि नसीबन बच्चन के बच्चों को अपने घर में पाल रही है। दोनों को यह बुरा लगता है। यासीन यहाँ तक कहता है कि बच्चन उसे हिन्दू बना रहा है। लेकिन चरम स्थिति तो तब पहुँचती है, जब साईं उसे समझाता है, डराता है और एक तरह से धमकियाँ देता है कि वह हिन्दू बच्चों को घर से निकाल दे।

नसीबन इतना ही कहती है, ''देख साईं, के बच्चे तुम्हारी आँखों में करक रहे हैं। मेरे लिए धरम-करम का सवाल नहीं है। सीधी-सी बात है, मुझे इन बच्चों को बिलखता नहीं देखा गया सो ले आई। कल को इनका बाप आ जायेगा तो चले जायेंगे।'

स्पष्ट है कि नसीबन का सरोकार पूर्णरूप से मानवीय है और इसी को वह सर्वोपरि महत्त्व देती है।

नसीबन सलमा और सत्तार के आपसी प्रेम की भी समर्थक है। वह सत्तार से कई बार सलमा को अपने घर में बुलाकर मिलने को कहती है। यासीन और याकूब से साईं की धूनी के पास जिन्ना को लेकर जब झगड़ा हो जाता है, तब साईं उसे मस्जिद की कोठरी से निकाल देता है। सत्तार सड़क पर आ जाता है। नसीबन उसे अपने घर ले जाती है और अपनी कोठरी में स्थान देती है। उसे मुसलमान साम्प्रदायवादियों अथवा साईं का इतना भी डर नहीं है कि ये सत्तार की दुश्मनी का बदला उससे लेंगे। अन्त तक वह सलमा और सत्तार के प्रेम का समर्थन करती है और चाहती है कि दोनों शादी करके साथ-साथ रहने लगें।

नसीबन की निर्भयता तो जैसे इस कथानक को आलोक से भर देती है। संघियों के घर पर चढ़ आने और बच्चन के बच्चों को माँगने पर वह शेरनी की तरह खूंखार हो उठती है। उसके आगे किसी की भी नहीं चलती क्योंकि वह सदा न्याय के मार्ग पर रहती है। वह कहती है, जिसके बच्चे हैं, वह आकर बच्चों को ले जाए। हिन्दू और मुसलमान का सवाल इस प्रसंग में सर्वथा बेकार हो जाता है और लोग सिर झुका कर वहाँ से खिसक जाते हैं।

नसीबन बहुत संवेदनशील है। वह लोगों की भलाई और खुशी की सदा कामना करती है। वह सहज मानवीय दृष्टि की मूर्ति है। प्रगति, आपसी प्रेम और सौहार्द में ही उसे जीवन के अंकुर दिखाई पड़ते हैं। बच्चन जब अपने बच्चों को बुलवाता है तो सत्तार के विरोध के बावजूद वह उसके गहनों के साथ अपने रुपये भी भेज देती है।

पूरी बस्ती में केवल दो ही चिराग जलते हैं—एक साईं का, दूसरा नसीबन का। नसीबन को इस बस्ती के उजड़ जाने का गम तो है ही लेकिन उसे सबसे बड़ा गम है उन मानवीय रिश्तों के बिखर जाने का, जिनके चलते यहाँ जीवन जीने के लायक नहीं रह गया है। वह प्रायः मस्जिद की सीढ़ियों पर अथवा साईं के पास बैठकर वहाँ के पेड़-पौधों, गलियों, टूटे हुए घरों ही नहीं, सुबह-शाम की फिजाँ तक को उन पुराने संदर्भों से जोड़कर देखती रहती है। एक वह समय था जब बस्ती में इन्सान थे, उनकी खुशियाँ थीं, उनके भय थे और उनके जीवन-संघर्षों में सदा एक सरगर्मी बनी रहती थी।

लेखक की वैचारिक संवेदना का विकास उस समय चरम सीमा पर पहुँचता है, जब बस्ती छोड़कर गये हुए लोगों के बच्चे वहाँ के ऊसर में बन रहे पातालवेधी कुओं में मजदूरी करने के लिए वापस लौटते हैं। वे बड़े हो गये हैं। नसीबन खुशी के मारे रो पड़ती है। उनके खाने-सोने का प्रबंध करती है और उन्हें उनके गिरे हुए घरों की पहचान कराती है। कमलेश्वर बड़ी खूबी से नये युग के आगमन की ओर संकेत करते हैं। साम्प्रदायिकता का अन्त शायद मजदूरों के नेतृत्व में ही सम्भव होगा और नसीबन जैसे सहज मानवतावादी लोग उनका समर्थन और स्वागत करेंगे।

## साईं

धार्मिक अन्धविश्वास, साम्प्रदायिकता और रूढ़िवादिता के प्रतीक के रूप में साईं को चित्रित कर कमलेश्वर ने उपन्यास में उसकी व्यापक भूमिका दर्शायी है। वह हर जगह है, हर काम में हस्तक्षेप करता है और बस्ती के हर आदमी को अपने प्रभाव में रखना चाहता है। धूनी में लोबान

डाल कर वह एक आक्रामक वातावरण की सृष्टि करता है और लोगों के ऊपर यह प्रभाव डालने की कोशिश करता है कि सामान्य आदमियों से अलग, वह खुदा के ज्यादा नजदीक है। वह जो भी करता है—वही खुदा की मर्जी है। अपने इस प्रभाव को बनाये रखने के लिए वह हर प्रकार के नीच कार्य करता है। पुलिस की दलाली से लेकर लोगों के पीछे जासूस लगाने का काम करने में उसे तनिक भी हिचक नहीं होती। वह एक क्रूर इन्सान है जो हमेशा अपनी दैवी शक्ति सिद्ध करने के चक्कर में लगा रहता है।

सत्तार और सलमा के प्रेम सम्बन्धों की जानकारी मिलते ही वह बेचैन हो उठता है और हर उपाय करता है जिससे उनके आपसी सम्बन्ध टूट जाएँ।

नसीबन और बच्चन को लेकर वह बेहद परेशान होता है। किसी हिन्दू के साथ मुसलमान स्त्री का सहृदयतापूर्ण व्यवहार साईं की निगाह में घोर अपराध है। बच्चन के लड़कों को वह नसीबन के घर से निकलवा देना चाहता है। अपने मन्तव्य में सफल न होने पर वह पुलिस को मिला कर, सत्तार को उनसे पिटवाता है और बच्चन को फरार होने पर मजबूर कर देता है।

बस्ती में साम्प्रदायिकता का विषबीज बोने का काम उसी की निगरानी में चलता है। वही मस्जिद में मुल्लाओं की सभाएँ करवाता है और वही याकूब और यासीन को बढ़ावा देता है।

कुल मिलाकर साईं एक धार्मिक कठमुल्ला और खलनायक की भूमिका अदा करता है। वह अपनी हीन ग्रंथियों की तुष्टि के लिए धार्मिक लफ्फाजी का सहारा लेता है।

## सत्तार

सत्तार इस बस्ती में बाहरी आदमी था। पहले वह सर्कस में काम करता। और वहाँ से कोई नया कारोबार शुरू करने के लिए आया था। साईं ही उसे इस बस्ती में ले आया था। वह एक समझदार और ईश्वर से डरने वाला आदमी था। इसलिए जल्दी ही बस्ती के लोगों से

उसकी मेल-मुहब्बत हो गयी थी। लड़के उसे पसन्द करते थे। वह तरह-तरह के जादू करता था। ताश के खेल दिखाकर लोगों को प्रसन्न किये रहता था।

वस्तुतः सत्तार एक उखड़ा हुआ आदमी है। सर्कस में घोड़ों की जीन कसने का काम करता था। सर्कस में काम करने वाली लड़कियों के सम्पर्क के कारण बस्ती में आते-आते उसे सलमा से सम्पर्क की तमन्ना हुई और वह गाहे-बेगाहे एक भुतहे मकान में उससे मिलने भी लगा।

सत्तार की मनोवृत्ति एक विस्थापित आदमी जैसी है। वह सलमा को ही अपने जीवन के केन्द्र में रखकर निर्णय लेने लगता है। सलमा मिले तो वह नर्क में जाने को भी तैयार है।

वह पाकिस्तान और जिन्ना मियाँ की बात नहीं समझ पाता। साईं के आगे विरोध प्रकट करने पर उसकी पिटाई भी हो जाती है लेकिन वैचारिक विरोध की क्षमता उसमें नहीं है। कई तरह के विचार उसके मन को डाँवाँडोल किये रहते हैं।

स्थिति की वास्तविकता का सामना न कर पाने के कारण ही वह आत्महत्या कर लेता है। उसकी जीवन्तता और मस्ती निर्णय न ले पाने के अभाव में एक अमिट उदासी और निराशा में बदल जाती है। उसमें विरोध करने की क्षमता तो है लेकिन उस विरोध को लेकर संघर्ष करना उसके चरित्र में नहीं है।

### सलमा

सलमा के रूप में चित्रित नारी चरित्र अपने व्यक्तिगत जीवन की विचित्र परिस्थितियों के कारण ध्यान आकर्षित किये बगैर नहीं रहता। स्वभाव से सहज संघर्षशील सलमा, अस्पताल में नौकरी करने के बावजूद एक ऐसे व्यक्ति के साथ ब्याही है, जो मानसिक रूप से पूर्णतः रुग्ण है। वह स्त्रियों की तरह सजता है और अपने दोस्त के साथ गुलछर्रे उड़ाता है। वह किसी स्त्री का पति होने के काबिल न होने पर भी सलमा का पति बना हुआ है और उसके स्त्रीत्व का उपभोग करता है।

सलमा में विरोध की क्षमता नहीं है—हमारे समाज में स्त्री विरोध

करके कर भी क्या सकती है। समाज की दृष्टि में वह हीन है इसलिए उसकी सारी तकलीफें गौर करने के काबिल कहाँ बन पाती हैं। समाज के ठेकेदार सदा साईं की ही भूमिका अदा करते आये हैं। विवाह की जंजीर उसे और भी गुलाम बना देती है। सलमा इसी जंजीर में बँधी-बँधी तड़पती रहती है।

सलमा की सृष्टि लेखक ने सहानुभूति और सजग दृष्टि से की है। वह मानसिक रूप से हमेशा कस्बे के प्रगतिशील लोगों के साथ बनी रहती है। नसीबन को आदर देती है और कई बार उसे ऐसी सूचनाएँ पहुँचाती है, जिससे स्पष्ट लगता है कि वह साईं और उसके गुर्गों की विरोधी है। सलमा सत्तार को बहुत गहराई से प्यार करती है लेकिन अपने अनाचारी पति को छोड़ कर सत्तार के साथ हो लेने की क्षमता उसमें नहीं है।

बच्चन

बच्चन उपन्यास का एक अप्रस्तुत चरित्र है। वह एक बार सत्तार को यह समझाते हुए उपन्यास में आता है कि सलमा को कहीं भगा क्यों नहीं ले जाते। दूसरी बार नसीबन को यह सूचना देने आता है कि उसके बच्चे की टाँगें टूट गयी हैं।

ऐसा भी आभास उपन्यास में मिलता है कि वह चोरी-छिपे शराब बेचता है। लेकिन उसके क्रिया-कलापों का कहीं भी विशेष वर्णन नहीं मिलता। इस सबके बावजूद बच्चन उपन्यास में प्रायः मौजूद है। नसीबन का प्रिय पात्र होने के कारण उसकी चर्चा साईं के दल में सदा बनी रहती है।

वह एक लापरवाह और गैरजिम्मेदार आदमी होने की सूचना देता है। एक तो यह कि वह अपने बाल-बच्चों को नसीबन के सिर पर डाल कर फरार हो गया है। दूसरे यह कि उसने मल्लाहों से नसीबन के बारे में उल्टी-सीधी बातें कर रखी हैं। जो अनायास ही सत्तार के सामने आ जाती हैं। नसीबन के त्यागपूर्ण, दृढ़ चरित्र के सामने बच्चन की हीनता उस समय और भी उजागर हो जाती है जब साम्प्रदायिक विद्वेष बढ़ने पर वह अपने बच्चों को नसीबन के यहाँ से बुलवा लेता है।

**अन्य चरित्र**

मकसूद, यासीन और इफ्तिकार ताँगे वाले के अलावा अन्य अनेक चरित्र कथानक में वातावरण की सृष्टि के लिए नामांकित हैं। इन सारे चरित्रों का सृजन तत्कालीन सामाजिक संदर्भों की देन है अथवा यों कहें कि लेखक ने उन्हें अपने अनुभव के दायरे से उठाकर उपन्यास में ला दिया है।

किसी भी उपन्यास में, यदि सामाजिक संदर्भों का पूरा अन्तर्विरोध उसके चरित्रों के सहज जीवन का हिस्सा नहीं बन पाता तो उपन्यास अपने समय का प्रतिनिधित्व करने में असमर्थ रह जाता है। इतना ही नहीं, उसे एक रचना होने की मर्यादा भी नहीं प्राप्त होती। कमलेश्वर इस सत्य से पूरी तरह अवगत हैं इसलिए विभाजन जैसी महत्त्वपूर्ण अन्तर्वस्तु का निर्वाह करने के लिए उन्होंने उन सारे आयामों को दृष्टि में रखा है और उसी के अनुरूप पात्रों का चयन किया है।

मकसूद और यासीन जैसे चरित्र मुस्लिम समाज में सहज ही खोजे जा सकते हैं। कमलेश्वर ने उनकी कुण्ठाओं सहित उन्हे प्रस्तुत करके जीवन्त बना दिया है।

सर्वाधिक ध्यान देने की बात तो यह है कि इन चरित्रों में उनके पेशे और संस्कार का वैपरीत्य सहज ही लक्षित किया जा सकता है।

वास्तविक सामाजिक संदर्भों से उठाये गये इन चरित्रों की पहचान इनके नितांत अपनेपन में है जो परस्पर एक-दूसरे से कहीं भी मिश्रित नहीं होती। यही कारण है कि उपन्यास के सारे पात्र पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं।

—मार्कण्डेय
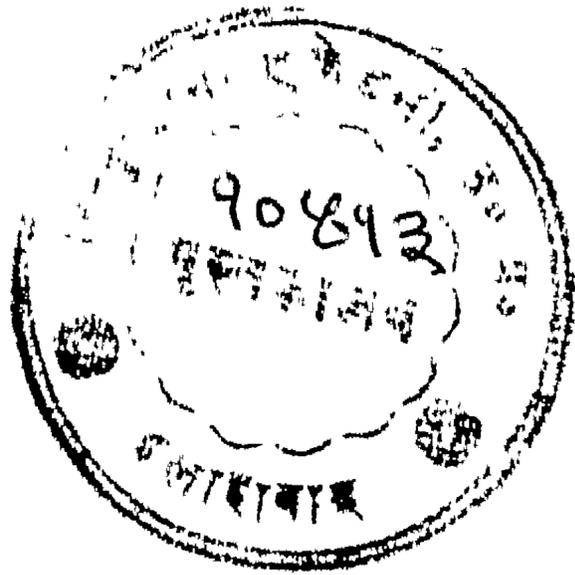
लौटे हुए मुसाफिर

…सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।

यह वही बस्ती है जिसने अट्ठारह सौ सत्तावन में अंग्रेजों से लोहा लिया था। हर कौम और मजहब के लोगों ने कंधा से कंधा मिलाकर गोलियों की बौछार सीनों पर झेली थीं।

…तब बहुत खूबसूरत थी यह बस्ती।

राजा के तालाब में कमल फूलते थे। धीमरों के लड़के कच्चे कमल-गट्टे बेचने आया करते थे। दूसरे तालाबों में बैंजनी जल-मंजरी फूलती थी…उसके पत्ते नागों की तरह फन उठाये रहते थे। पजावों के ढलानों पर बेरियों के बाग थे। जंगल में कमरख और आँवले के पेड़ थे। पके हुए बेल जब महकते थे, तो बस्ती में गंध मँडराती थी। महुआ टपकता था, तो खुमार छा जाता था। घरों में भभके चलते और कच्ची शराब खिंचती थी।

नदी-तालाबों में सींग, पढ़ीन, डिंगार, सौर और रोहू मछलियों की भरमार थी। नदी के पार ताड़ के बाग थे, जहाँ नीरा बिकता था।

मंदिरों के आँगनों में गेंदे फूलते थे और मस्जिदों के सहन में बेला, चमेली और मोतिया महकता था। बड़ी मस्जिद के गुम्बदों और मीनारों पर जंगली कबूतर बैठे रहते थे, सहन बीट से भरा रहता था।

जब हिन्दुओं की बस्ती से ताजिये गुजरते थे, तो उन पर लोग गुलाब-जल छिड़कते थे और हिन्दू औरतें अपने बच्चों को गोदी में उठाए ताजियों के नीचे से गुजरती थीं और दौड़-दौड़कर फेंके हुए मखाने बीनकर श्रद्धा से आँचल के खूट में बाँध लेती थीं।

जब रामलीला का विमान उठता था, तो मुसलमान औरतें दरवाजों की चिकें या बोरों के पर्दे उलटकर मूर्तियों के शृङ्गार की तारीफ करती थीं और उनके बच्चे विमान के साथ दूर तक शोर मचाते हुए आया करते थे—"बोल राजा रामचन्द्र की जै।"

···लेकिन सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।

किले के आस-पास पुराना शहर बसा हुआ था। आज भी वह शानदार किला यहाँ मौजूद है, जिसे देखकर पुरानी यादें ताजी हो आती हैं। उत्तर तरफ की दीवारें, जो अंग्रेजों के गोलों से सन् सत्तावन में ढही थीं, आज भी वैसी ही पड़ी हैं। अब घुड़साल में फकीर रहते हैं और हाथीखाने में ताँगेवाले। ठाकुर राजाओं का वह राज देखते-देखते धूल में मिल गया। बाजार सूना हो गया। मण्डी उजड़ गई···और यह राज सूबे का एक जिला बना दिया गया।

वे दिन बीत गये और शहर किले के आस-पास से हटकर दक्षिण तरफ बसने लगा। अंग्रेजी हुकूमत के साथ-साथ ईसाई आये और उनकी एक अलग कालोनी बन गई। नदी पार सिविल लाइन्स बनी और अंग्रेजी दबदबा पूरे शहर पर हावी हो गया। नन्हें-से शहर में एकाध गिरजे और बन गये। कुछ छोटी-मोटी मशीनें शहर में आईं। इधर-उधर बुक-बुक करने वाली चक्कियाँ लग गईं और एकाध आरा मशीन। साहब लोगों का काम करने वाली चाटुकार जाति का एक तबका और बढ़ गया। यह तबका अपने-अपने घरों पर हिन्दू मुसलमान था, लेकिन साहब के सामने सिर्फ नौकर था। नये शहर से बाहर एक और नई बस्ती की नींव पड़ गई, जिसमें खुले हुए बँगले, कचहरियाँ, बाग, खेल के मैदान, जेल और दूसरे सरकारी दफ्तर बन गये। जनता के लिए शहर में जो सबसे बड़ी इमारत बनी—वह कोतवाली थी, जिसके बाहर चौबीसों घंटे संतरी पहरा दिया करते थे। इस इमारत और इसके भीतर चलनेवाले कारबार के बारे में लोगों के दिलों पर एक खौफनाक डर समाया हुआ था।

लेकिन भीतर-भीतर एक आग भी सुलग रही थी। कुछ दबंग नौजवान कभी-कभी शहर में दिखाई पड़ते थे, जो छिप-छिप कर लोगों से मिलते थे और अस्पताल के पासवाली गंदी कोठरियों में बैठकर सलाह-मशवरा किया करते थे। उनके दिलों में क्या है, इसका पता किसी को भी नहीं था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे इस जत्थे में। उन नौजवानों

की चाल में एक अजीब-सी मस्ती थी और आँखों में अंगार धधकते थे…।

…कि तभी नदी के पुल के पास किसी साहब के मरने की खबर जंगल की आग की तरह छोटे-से शहर में फैल गई थी। दिन-दहाड़े किसी आदमी ने अंग्रेज पुलिस अफसर का खून कर दिया था…इन्तकाम की यह आग बहुत पहले से भड़क रही थी, यह उसका पहला विस्फोट था। राधेश्याम और यूनुस पकड़े गये थे। मुकद्दमे का नाटक हुआ और जेल में यूनुस को फाँसी दी गई। एक देशभक्त के खून से इस जेल का राज तिलक हुआ था। राधेश्याम को कालापानी भेज दिया गया। लेकिन इन ज्यादतियों के बाद भी जागरूक लोगों के हौसले पस्त नहीं हुए थे। वे छिप-छिपकर मीटिंगें करते और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही मिलकर अंग्रेजों से नजात पाने की तरकीबें सोचते। शहर में कोई भी बहुत बड़ा नहीं था। छोटे-छोटे मकानों की बस्तियाँ थीं, ज्यादातर पेशों के हिसाब से मुहल्ले बँटे हुए थे।

शहर से थोड़ी-सी अलग बसी हुई यह बस्ती चिकवों की थी। देशी राज के दिनों में बड़े अच्छे हाल थे इन लोगों के। उसके बाद अंग्रेजी हुकूमत के तूफान को भी इन्होंने झेला और फिर खुशहाल हो गये।

सन् बयालीस के आन्दोलन में चिकवों के जवान लड़कों ने बड़ा ऊधम मचाया था। उन्हें नहीं मालूम था कि देश कैसे आजाद होगा, पर इतना उन्हें मालूम था कि कुछ करना चाहिए; और वे जो कुछ कर सकते थे, वह उन्होंने किया था।

जुम्मन साईं की कोठरी के सामने धूनी रमी रहती थी। अगर-बत्तियाँ जलती रहतीं और लोबान का पाक धुआँ उठता रहता था। इक्के और ताँगेवाले—स्टेशन के कुली और छोटे दूकानदार वहाँ शाम को इकट्ठे होते और गप्पें लड़ाते।

इफ्तिकार कहा करता था—"जिन्ना साहब किधर से मुसलमान हैं, सुना नमाज तक नहीं पढ़ते।"

तभी साईं टोकता था, "तुझे क्या लेना-देना है? तू अपना इक्का जोत।"

लेकिन बोलनेवाले बोलते रहते और साईं चुपचाप सुनता रहता।

और फिर सन् पैंतालीस का जमाना आया। एक बूंद खून नहीं गिरा, किसी मुहल्ले पर धावा नहीं हुआ। किसी ने किसी को नहीं मारा। किसी ने किसी को गाली तक नहीं दी। मस्जिदों में लड़ाई की तैयारियाँ नहीं हुईं। मन्दिरों में ईंट-पत्थर इकट्ठे नहीं हुए···जो रोज पिटते थे, उन्हें भी किसी ने नहीं पीटा।

लेकिन भीतर-भीतर एक भूचाल आया था। बड़ा भयानक भूचाल, जिससे बस्ती की चूल हिल गई थी। भीतर-भीतर सब कुछ बिगड़ गया था। दिली इमारतें ढह गई थीं। अपनेपन का जज्बा मर गया था। नफ़रत की आग ने इस बस्ती को निगल लिया था। और यह भरी-पूरी चिकवों की वह बस्ती सबसे पहले उजड़ गई थी। पता नहीं, यह आग कहाँ छिपी हुई थी।

नफरत की इस आग की चिनगारियाँ बाहर से आई थीं।—दूसरे शहरों, कस्बों और सूबों से।

बड़ी मनहूस रातें थीं। जैसे पूरी बस्ती को साँप सूंघ गया था। सब सबको पहचानते थे, पर सामने पड़ते तो अजीब हैरत और शक के अंदाज में एक-दूसरे को देखते। मन में बैठे हुए शंकाओं के साँप भीतर-बाहर फुफकारने लगते थे और आँखों में अजनबीपन की चमक भर जाती थी।

···चिकवों की इस बस्ती में ही जुम्मन साईं की कोठरी और नसीबन की झोपड़ी भी थी। ये दोनों तब भी यहीं थे और अब भी यहीं हैं। इनके अलावा गिरे और ढहे हुए मकानों के निशान बाकी रह गये हैं। जमीन वही है, पीपल और जामुन के पेड़ भी वही हैं···दूर, मैदान जहाँ नीचा होकर हरी पहाड़ियों पर फैल जाता है, वहाँ बेरियाँ हैं··· टीलों के पीछे कमरख और आँवले का जंगल है, जहाँ बम्बा बहता है; और ढलान से बाईं तरफ गहरा तालाब है, जिसमें सुअर और भैंसें नहाती हैं।

पहले शहर से स्टेशन जाने वाली सड़क इधर से ही जाया करती थी। कंकड़ की सड़क पर पहिये किरकिराते हुए और गालियाँ बकते हुए

इक्केवान इधर से ही गुजरते थे। साहबों की मोटरें भी सरसराकर गुजर जाती थीं, या कभी डाकबँगले में आकर रुक जाती थीं तब यह डाकबँगला एक उदास गिरजे की तरह दिखाई पड़ता था। कभी-कभी कोई बड़ा साहब आकर ठहरता, तो लाल पगड़ियाँ दिखाई देने लगतीं। झाड़ियाँ साफ कर दी जातीं और बाहर एक पैट्रोमैक्स लटक जाता था।

आज भी सब कुछ लगभग वैसा ही है, जैसा आजादी से पहले था। सिर्फ इस बस्ती को उदासी ने जकड़ लिया है। ठहरी शामें होती हैं और रुका हुआ वक्त है।

इस उजड़ी हुई बस्ती से दूर-दूर तक का दृश्य दिखाई देता है। बहुत दूर पर धान-मिलों की पतली चिमनियों से रेंगता हुआ धुआँ आसमान के नीलेपन में खो जाता है। धान-मिलों के पीछे पजावे हैं, जिनमें ईंटें पकती हैं। वे पजावे गोबर के बड़े-बड़े ढेरों की तरह सुलगते रहते हैं। उसके पीछे किसी गाँव की बस्ती है और हरे-भरे मैदान हैं। छतनार पेड़ हैं। कोई तालाब या दलदल भी है, क्योंकि उधर से सारसों की तेज आवाज की गूँज आती है, या कभी-कभी जलपक्षी दलदल पर झुकते हुए नजर आते हैं।

एक सफेद मठिया भी चमकती है, जिसके ऊपर बाँस में अटका हुआ एक झण्डा फहराता है। बाँस अब टेढ़ा हो गया है और झण्डा फट गया है···ऐसा लगता है कि वह किसी हारे हुए योद्धा का निशान है। उस मठिया में एक मूरत रखी है, जिसे कोई पूजने नहीं जाता।

और इधर है स्टेशन और एक बरसाती गहरा नाला, जिसके पुल से रेल गुजरती है तो लोहे की खोखली-सी आवाज आती है। स्टेशन पर तब कुछ चहल-पहल होती है। इक्के भरते हुए नजर आते हैं और कुछ रौनक हो जाती है। आवाजें यहाँ से नहीं सुनाई पड़तीं। सिर्फ रेलगाड़ी की धमक का एहसास होता है।

स्टेशन के उस पार अब एक बस्ती और नजर आने लगी है। और नसीबन स्टेशन के उस पार वाली बस्ती में चमकती बिजली की रोशनी की ओर देखती रहती है।

शहर भर में अगर कहीं बिजली थी तो सिर्फ स्टेशन के पास वाली

बस्ती में। आजादी के बाद भी यह शहर उदास और अँधेरा ही रहा। पर स्टेशन के उस पार पातालतोड़ कुएं खोदने वाले जर्मन कारीगरों का डेरा पड़ा हुआ है। जब से जर्मन कारीगर आये हैं तब से ऊसर आबाद हुआ है; कँटीली झाड़ियों वाला ऊसर, जहाँ धरती के तन पर जगह-जगह सफेद चकत्ते पड़े हुए थे और ठूंठ उगे हुए थे। बरसात के बाद जब धूप चटखती थी और धरती में दरारें पड़ जाती थीं तो बच्चे इस ऊसर का चक्कर लगाया करते थे। छतरी लगाये सफेद कुकुरमुत्ते बीनते थे और लड़ते-झगड़ते लौटते थे।

नसीबन की आँखों के सामने सब दृश्य नाच जाते हैं। उस ऊसर में, जहाँ आज पातालतोड़ कुएँ खोदने वाले जर्मन कारीगरों ने बिजली लगा ली और राउटियाँ खड़ी कर ली हैं, वहाँ वह बच्चों को खोजने जाया करती थी। जो रेल देखने जाया करते थे, बड़ा गुलगपाड़ा मचाते थे। मुसाफिरों को मुंह बिराते या ढेले फेंकते थे। और प्लेटफार्म से बीड़ियों के नम्बर और सिगरेटों की पन्नियाँ बटोर कर लाते थे।

पर जब आज उस तरफ देखती है, तो बीरानी और बढ़ जाती है। वे सब बच्चे चले गये। अब कोई कुकुरमुत्ते बीन कर नहीं लाता। स्टेशन से बीड़ियों के नम्बर और सिगरेटों की पन्नियाँ बटोर कर नहीं लाता···।

और अब तो इस ऊसर में बिजली भी लग गई। एक नयी जिन्दगी की झलक मिल रही है···लेकिन जब तक अपने कहे जाने वाले अपने पास न हों, नई जिन्दगी भी बहुत पुरानी और बोझिल लगती है। वही बोझ-सा था नसीबन के दिल पर···।

लेकिन जब से ऊसर आबाद हुआ है, जिले में मजदूरों की रोजी चमकी है। जैसे-जैसे काम बढ़ता जाता है, मजदूरों की खपत भी बढ़ती जाती है। बहुत से नये लोग जब इस छोड़े हुए रास्ते से गुजरते हैं तो नसीबन उन्हें देखती है। वे मजदूर हैं, जो पातालतोड़ कुएँ बनाने वाले कारीगरों के साथ काम करने आये हैं।

शाम गहरी हो रही थी, नसीबन की आँखें वहीं लगी हुई थीं—बिजली और नई-नई मशीनों के साथ यह कैसी जिन्दगी लौट रही है? यह

नई जिन्दगी कैसी होगी ? क्या यह वैसी ही बेफिक्री, गरीबी और मस्ती की जिन्दगी होगी ? और होगी भी तो क्या ? नसीबन तो एक छूटा हुआ किनारा है, जिस पर अब कोई लहर नहीं टकरायेगी।...उसका मन उदास हो गया था, तभी साईं ने कहा—"इतने बरस हो गये, इधर कोई नहीं आया...अब बच्चन भी क्या आयेगा। सब वीरान हो गया, सब उजड़ गया।"

बच्चन का नाम सुनकर नसीबन की यादें और हरी हो आईं। धीरे से बोली, "साईं, धरती नहीं उजड़ती...।"

सुनकर साईं अविश्वास से मुस्करा दिया।

नसीबन को कुछ गुस्सा भी आया। पर साईं से कहे भी क्या ? वह फिर उधर रोशनी की तरफ ताकने लगी। सुरमई तम्बू चमक रहे थे। बड़ी-बड़ी मशीनें पहाड़ियों की तरह स्थित खड़ी थीं। एक राउटी से धुएँ की लकीर उठ रही थी। उस धुंधली रोशनी में आदमियों की काली छायाएँ अकुलाती-सी घूम रही थीं। कभी रोशनी के बीच कोई आदमी आ जाता, तो उसकी पसीने से भीगी देह ओस भीगी लाट की तरह चमक उठती थी...पर वह सब इतना पराया था कि मन नहीं रमता था। नसीबन ने निगाह हटाई तो सड़क पर चली गई। वही वीरान सड़क। जो डाकबँगले के पास से होती हुई इधर आती है और यहाँ से मुड़कर शहर की ओर चली जाती है। जिसकी पटरी की दुकानें उठकर अब नई सड़क पर चली गई है।

लेकिन वीरान सड़क पर सात-आठ छायाएँ इधर ही आ रही थीं... नसीबन ने देखा, वे छायाएँ सचमुच इधर ही आ रही थीं पर इस बस्ती में अब कौन आयेगा ? यह उजड़ी बस्ती ! और फिर इस वक्त कौन आयेगा यहाँ; राहरों होंगे, अपने रास्ते चले जाएँगे...।

* * *

सन् सैंतालीस में पाकिस्तान बना और यह चिकवों की बस्ती अपने-

आप उजड़ गई। ताँत के सितार पर उभरने वाले शाम के गीत डूब गये —'मेरे मौला मदीने बुला ले मुझे····।'

वह सत्तार गाया करता था। सत्तार, जो पहले सर्कस कम्पनी में घोड़ों की जीन कसा करता था और बहुत बढ़-चढ़ के बताया करता था —"खुदा कसम, क्या जिस्म होते हैं सर्कस की लड़कियों के···ताँत की तरह कसे हुए और चुस्त। एक से आँख लड़ी थी अपनी···सीलोन की लड़की थी। ड्रेस पहनती थी तो कहती थी—"सत्तार प्यारे, जरा तनी तो बांधना। खुदा-कसम जिन्दगी तो वही थी।

लेकिन वे कहानियाँ खो गईं। पाकिस्तान क्या बना, सब बिखर गया। आदमी के हौसले बिखर गये, मन की मुरादें टूट गईं, दिलों के रिश्ते खत्म हो गये····।

इस बस्ती के चिकवे भी पाकिस्तान जाने के हौसले से भागे थे। पर गरीबी आड़े आ गई थी, इसलिए सूबा भी पार नहीं कर पाये। जिले में इधर-उधर बिखर गये। लेकिन यहाँ कोई लौटकर नहीं आया···पता नहीं, अब यहाँ के लोग कैसा सलूक करें ? बस्ती में रहने दें या न रहने दें। आखिर हिन्दुओं का शहर है···।

और हिन्दुओं में से सिर्फ बच्चन रह गया था, बस्ती में। लेकिन एक दिन वह भी घबराकर लापता हो गया। वे बीते हुए दिन भी कैसे थे···।

साईं की कोठरी ही बस्ती की सबसे रौनकदार जगह थी। और जुम्मन साईं ही इस बस्ती के सभी झगड़ों का निपटारा किया करता था। सत्तार और सलमा का मामला इसने निपटाने की कोशिश की थी। यूँ साईं दुनिया की बातों से बहुत दूर होने का नाटक करता था, पर भीतर ही भीतर वह उसी से रमा हुआ था। उसकी सुरमा लगी आँखें बाज की तरह तेज थीं। वह हर तरफ निगाह रखता था।

सत्तार किसी दूसरे कस्बे से आया था। शहर में साईं से उसकी मुलाकात हुई थी। वहीं से साईं उसे इस बस्ती में ले आया था, रास्ते में ही सत्तार ने कहा था—"लगता है अब अपना पाकिस्तान बन जाएगा ···शायद एक बेहतर जिन्दगी मिले मुसलमानों को···यहाँ तो बड़ी गरीबी है, न करने को काम है, न रहने की जगह।"

और मस्जिद की बाहरवाली एक कोठरी में सत्तार को रहने की जगह मिल गई थी। नसीबन ने इस नये नौजवान को देखा, तो साईं से पूछा था—"यह कौन है ?"

"बड़ा समझदार और खुदा से डरनेवाला आदमी है...नाम सत्तार है। एक सर्कस में काम करता था, अब छोड़कर चला आया है। कुछ अपना काम शुरू करना चाहता है।" सुनकर नसीबन ने गहरी नजरों से साईं को देखा था, जैसे वह सब जानती हो कि यहाँ आकर वह कौन-सा काम शुरू कर सकता है।

लेकिन बस्ती के लड़कों से सत्तार का मेल-जोल हो गया था। वह उन्हें ताश के खेल और जादू के करिश्मे दिखाता था। लड़के उसके मुरीद हो गये थे क्योंकि वह हथेली में रखा हुआ पैसा गायब कर देता था और चाहने पर बहुत-से पैसे मँगा लेता था। बच्चों के लिए सबसे अचरज की बात यही थी।

और जुम्मन साईं के कान खड़े हो गये थे जब उसने सुना था कि सत्तार और सलमा में ताक-झाँक चल रही है। वे एक-दूसरे को इशारे करते हैं और सलमा जब अस्पताल की तरफ जाती है तो सत्तार कुछ दूर पीछे-पीछे जाकर फिर उसके साथ हो लेता है।

वैसे भी बाप का खौफ सलमा को नहीं था, क्योंकि वह जनाने अस्पताल में डाक्टरनी की निजी नौकरानी थी और खुद कमाती थी। साईं ने एक रोज खुद ही पीछा किया तो सत्तार ने ताड़ लिया था। वह कतराकर दूसरी तरफ चला गया था। सलमा के मुँहफट होने के कारण साईं की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उसे बुलाकर कुछ कहे। सलमा अपने आदमी को पाँच बरस पहले छोड़कर चली आई थी और तब से यहाँ अपने बाप के पास रह रही थी।

सलमा के मकान के पास ही उधर पीपल के सामने एक पुराना मकान था, जिसकी तीन कोठरियों में से दो गिरी हुई थीं। कच्चा मलवा और टेढ़ी धन्नियाँ नीचे पड़ी थीं और कोठरी में मकड़ियों के जाले लगे हुए थे।

उस मकान में कोई भी घुसने की हिम्मत नहीं करता था। जादू

कसाई ने अपनी बेवफा औरत का कत्ल वहीं किया था। और खुद काले पानी की सजा काट रहा था। लोगों के खयाल से जानू की बीबी की प्यासी रूह वहाँ भटकती थी।

जब भी तेज हवा चलती तो वह ढहा हुआ मकान बेहद खौफनाक हो जाता था।

एक शाम···बस्ती में दिये जल गये थे। सलमा अस्पताल से लौट आई थी। सत्तार अपनी कोठरी में बैठा था। पूरी बस्ती बड़ी उदास थी कि जोर से हवा चलने लगी। जानू के मकान के सामने वाला पीपल भूतों की तरह हँसने लगा। कुछ ही देर बाद बारिश होने लगी।

पानी बरसने का शोर चारों तरफ भर गया—बरसते और कच्ची गलियों में बहते पानी का शोर! मिट्टी कट-कटकर बहने लगी। टाट के पर्दे भारी होकर जिराबख्तर की तरह झूल गये और घरों के दियों की रोशनी काँप-काँपकर बुझने लगी····।

और तभी जुम्मन साईं की बाज जैसी तेज आँखों ने देखा—मस्जिद की कोठरी से निकल कर सत्तार उधर पीपलवाली गली में जा रहा था। फिर वह जानूवाले भुतहा मकान में घुस गया था। साईं की आँखें फटी रह गईं···।

और तभी तेजी से एक औरत उसी मकान में दाखिल हो गई थी।

और उसी क्षण तेज बारिश का जाल तेज हवा के साथ उस मकान और पीपल पर होता हुआ निकल गया।

साईं को लगा कि जानू की बीबी की रूह सत्तार से इश्क कर रही है और जब उस रूह का मन भर जाएगा, तभी खिला-खिलाकर मार डालेगी।

बारिश में बुरी तरह भीगता और सर पर बोरा डाले हुए बदरी आया। उसकी आँखों में आग और आश्चर्य था। साईं की कोठरी में अब भी धुआँ ठहरा हुआ था। भीगा हुआ बोरा लकड़ियों पर डालते हुए वह एकदम बोला—"गजब हो गया साईं! अब बस्ती में ये हरकतें होंगी? वह तुम्हारा सत्तार···।"

साईं बीच ही में बोला—"किस्मत है सत्तार की···अच्छा-खासा

नौजवान है···जानू की बीवी की रूह का मन उस पर आ गया है···और रूहों के बारे में साईं भी कुछ नहीं कर सकता। रूहों की जिन्दगी में मैं दखल नहीं देना चाहता···।"

बदरी ने सुना तो जोर देकर बोला—"साईं, वह रूह नहीं, हाड़-मांस की सलमा थी। मैंने अपनी आँखों से देखा है, इन्हीं आँखों से। हम लोगों के रहते अगर यह होगा, तो लानत है हम पर···।"

"हूँ!" साईं को लगा कि बात ठीक है। यह उसका भ्रम ही था कि रूह आई थी। सलमा और सत्तार जरूर यह मौका पाकर उस मकान में गये होंगे।

और सुबह ही साईं की कोठरी पर पेशी हुई। यही रस्म थी इस बस्ती की। गफूर, बच्चन, बदरी, जाफर मियाँ के साथ ही नसीबन भी मौजूद थी। सत्तार एक तरफ बैठा बीड़ी पी रहा था। सलमा और सलमा के अंधे बाप का इन्तजार था। साईं अपनी मूँगे की माला फेर रहा था। आँखों में सुरमे की ज्यादती से एक अजीब उनींदापन भरा हुआ था। उँगलियों में पड़ी हुई चाँदी की अँगूठियों के नग मेढक की आँखों की तरह उभरे हुए थे।

तभी ओढ़नी डाले हुए सलमा आई।

साईं ने सुर देखा और तसबीह फेरते हुए कुछ बुदबुदाया। एक चुटकी लोबान उसने धूनी में डाला और जैसे धुआँ पीता हुआ बोला—"सत्तार! तुम इसे पहचानते हो?" उसका इशारा सलमा की तरफ था। सत्तार कुछ घबरा गया। उसने बीड़ी जूते से दाबकर बुझा दी और धुंआँ उगलते हुए बुदबुदाया—"सभी पहचानते हैं।"

सलमा मुस्कराई।

साईं नाराज हुआ, 'बात बनाने की जरूरत नहीं है, जो पूछता हूँ उसका सीधा-सीधा जवाब दो।"

सत्तार ने गहरी साँस खींची, बोला, "मेरी समझ में नहीं आता कि मुझसे लेना-देना क्या है? मुझसे ये सवाल क्यों पूछे जा रहे हैं?"

साईं का पारा और चढ़ा। बदरी ने सोचा, अब जाल कसेगा। नसीबन गहरी नजरों से सलमा को ताक रही थी। साईं ने एक चुटकी

लोबान आग पर फिर डालते हुए पूछा, "तुम इससे मिलते-जुलते हो ?"

तभी सलमा की आवाज आई, "यह सब मुझसे पूछिये। मेरे बारे में बात पूछनी है तो मैं खुद हूँ, जो पूछिये, उसका जवाब मैं दूंगी।"

"तू ही बता, इसे जानती है ?" साईं ने और भी गुस्से में पूछा।

"खूब अच्छी तरह, और पूछिये।" सलमा ने जवाब दिया।

"तू इसके साथ...मेरा मतलब है कि उस भुतहे मकान में कल रात तू इसके साथ...यानी..." साईं बात नहीं कह पा रहा था।

सलमा ने नजर भर सत्तार को देखा और बोली, "मैं बताये देती हूँ...मैं इसके साथ भुतहे मकान में गई थी..." कहते-कहते उसकी आवाज कुछ भारी हो गई थी और गला रुंधने-सा लगा था।

"क्यों गई थी ?" साईं ने कड़ककर पूछा।

"मिलने...।" सलमा ने साफ-साफ कहा, पर उसकी आँखों में आँसू तैर आये थे, जैसे कहीं भीतर उसने कोई बात बड़ी गहराई से मससूस की हो। बेइज्जती की भनक भी साईं की बात में थी, पर जिस तरह बेहिचक उसने जवाब दिया था, उससे सभी के चेहरे फक रह गये थे।

नसीबन भी हैरत से सलमा को देख रही थी। सलमा ही साफ बयानी से साईं की जो बेइज्जती हुई थी उससे नसीबन भीतर ही भीतर बेहद खुश हुई थी।

साईं हताश था, लेकिन अपनी बेइज्जती वह कबूल नहीं कर पा रहा था। भीतर-भीतर भयंकर बदले की आग धधक उठी। सत्तार को उसने तेज नजरों से देखा और बोला, "तुम वह कोठरी खाली कर दो।"

"क्यों ?" सलमा ने आँखें पोंछकर कहा।

"मैं कह रहा हूँ।" साईं चिढ़कर बोला।

"ठीक है, खाली कर देंगे।" सलमा ने ही जवाब दिया। और वह घुटते हुए लोबान के धुएँ के घेरे से बाहर हो गई। वह उठकर बाहर चली गई। सत्तार अब भी चुप बैठा हुआ था। सलमा को जाते देखकर वह भी उठा तो साईं ने उसे रोका, "तुम अभी रुको।"

"रुक के क्या करूंगा ?" कहता हुआ वह भी बाहर निकल गया। छोटी-सी महफिल पर सन्नाटा छा गया। तभी वातावरण के भारीपन को

चीरती हुई नसीबन की आवाज सुनाई दी —"इस सबसे क्या फायदा हुआ साईं ?"

"तू अपना काम देख ।" साईं ने उसे दुतकार दिया ।

"सारी दुनिया की जिम्मेदारी क्यों ओढ़ ली है तुमने साईं ? जिसके जो मन आता है, करने दो…तुम टाँग क्यों अड़ाते हो ?" कहती हुई नसीबन खड़ी हो गई ।

* * *

और अब—जब नसीबन साईं को देखती है तो उसे लगता है कि यह बूढ़ा साईं भी बहुत नासमझ है । यह क्यों नहीं समझता कि जिन्दगी आखिर जिन्दगी है, वह उसकी बनाई लकीरों पर चलने वाली मुर्दा चीज नहीं ।

सत्तार और सलमा का यह किस्सा बस्ती में धीरे-धीरे फैल गया था । जितना यह किस्सा फैलता जाता था, साईं अपने को छोटा महसूस करता जाता था । पर उसका वश नहीं चल रहा था । सत्तार ने कोठरी भी खाली नहीं की थी और सुना था कि उसे जनाने अस्पताल में दरबान की जगह मिल गई । वह सुबह निकल जाता तो रात को ही लौटता था ।

पर इधर पिछले कुछ हफ्तों से नसीबन देख रही थी कि सत्तार बहुत उदास रहने लगा था, आखिर जब उससे नहीं रहा गया तो एक दिन जाकर नसीबन ने ही बात शुरू की, "सुना, तुम नौकर हो गये हो ?"

"हो गया था, पर निकाल दिया गया…आजकल कुछ भी नहीं कर रहा हूँ…।" सत्तार ने भारी आवाज में कहा ।

"ऐसी क्या बात है ?" नसीबन ने प्यार से पूछा था ।

"कुछ भी नहीं…बस, यूँ ही मन नहीं लगता । समझ में नहीं आता, कहाँ चला जाऊँ ? यह बस्ती छोड़कर कहाँ किनारा कर लूँ ।" सत्तार बोला था ।

'सलमा से लड़ाई हो गई है ?'' नसीबन ने पैनी नजर से उसके भाव पढ़ते हुए पूछा था।

''लड़ाई तो नहीं, पर उसका घर वाला आ रहा है।'' सत्तार ने बताया था।

''तो तू इतना परेशान क्यों है ? सलमा क्या कहती है ?'' नसीबन ने पूछा, पर उसे लग रहा था कि सब पूछकर भी वह कुछ कर नहीं पायेगी। लेकिन दुनियाँ में बहुत से ऐसे जख्म होते हैं जिनका मरहम बात कर लेना ही होता है।

लेकिन सत्तार को सलमा की बेवफाई मारे डाल रही थी। वह इसे बेवफाई ही समझता था। सलमा अपने घर वाले से तलाक भी ले सकती थी और बाकी जिन्दगी सत्तार के साथ गुजार सकती थी। चार गवाहों को वह कहीं से भी ले आता···लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। उसने सलमा को बहुत उकसाया कि वह तलाक ले ले, पर न जाने क्यों वह राजी नहीं हुई।

साईं के चेले कहते थे कि यह साईं की हिकमत का जोर है। साईं के पास सलमा का दिल बदल देने के अलावा और कोई चारा नहीं था। वही साईं ने किया था।

और सलमा के घरवाले मकसूद के साथ ही एक और आदमी भी उस बस्ती में आया था। वह अलीगढ़ का रहनेवाला था और अपने को सियासी कारकुन कहता था।

और जब उस सियासी कारकुन ने देखा कि इन चिकवों की बस्ती में कोई सनसनी नहीं है तो उसके दिल को चोट-सी लगी थी। वह कारकुन सोच ही नहीं पा रहा था कि ये चिकवे दुनिया की खबरों से इतने अलग-अलग कैसे रह रहे हैं, इन्हें यह भी नहीं मालूम कि मुल्क में क्या हो रहा है···कि मुसलमानों को एक नया मुल्क मिलने वाला है, जिसके लिए जद्दोजहद चल रही है।

जब वह देखता कि मसजिद में मकतब लगता है और मन्दिर की चहारदीवारी में पाठशाला जमती है और सब कुछ बदस्तूर चला जा रहा है तो वह सह नहीं पाता था····।

* * *

और सचमुच तब इस बस्ती की और ही फ़िजा थी। मुसलमान चिकवों के लड़के मस्जिद के मकतब में नरकुल की तरह हिल-हिलकर कुरानपाक की आयतें रटते और पाठशाला में संतरी की तरह खड़े होकर बच्चे प्रार्थना करते और पहाड़ा दुहराते।

छुट्टी होने पर तख्तियों, पटरियों और बस्तों से बेपनाह मार-पीट होती। बुदक्के फूटते, खड़िया से नाक-मुँह रंग जाता या फिर तख्ती-बस्ते वगैरह सब एक जगह इकट्ठे होते, एक-दो पहरेदार उन पर तैनात रहते और बाकी सब गोल बनाकर पजावे के पीछे वाली बेरियों पर धावा बोल देते। दूसरे रोज रखवाले की शिकायत पर इधर हमीद मुर्दा बना नजर आता, उधर किसनू की पीठ पर ताबड़तोड़ घूँसे बजते होते।

जुम्मन साईं लम्बा चोगा पहने, वीतराग-सा गली से होता हुआ शहर की ओर चला जाता। महमूदा का अब्बा बैठा सूप बनाता रहता, नाजिर का दादा पैर से छुरी दाबे खाल की डोरी काटता रहता। गली के हर छप्पर से बकरियों के मिमियाने की आवाज आती और भेड़ों या बकरियों की खालें लटकी हुई सूखती रहतीं।

गली के मोड़ पर ही बच्चन का घर पड़ता था। वह जंगल से बाँस काटकर लाता था। गली में ही आग जलाकर वह बाँसों के मोड़ सीधे करता। कभी-कभी बाँस पटाखे की तरह बजता था तो गली के लड़के बड़ा शोर मचाते थे—"बंदूक चली।"

और गली से बाईं ओर ही दिलावर मेले-तमाशों में बेचने के लिए डुगडुगिया या चिकारों के खोल खाल से मढ़ता रहता था। जब वह चिकारे तैयार कर लेता था तो बड़ी प्यारी फिल्मी धुनें बजाता था....।

रोजाना यह सब देखते हुए साईं निकल जाता था। यही एक बस्ती ऐसी थी जिसमें नई तामीरें नहीं हो रही थीं। सब जैसे के तैसे रहते आ रहे थे। और अपने कटोरे में पैसे खटकाता हुआ और तूंबी लिए हुए जब वह लौटता तो जैसे शहर-भर का दर्द बटोर लाता।

इस बस्ती के लोगों के लिए किसी की पैदाइश का दिन खुशी का दिन और मौत का दिन गम का दिन था। वे दुनिया में रहते थे क्योंकि उन्हें रहना था, वे काम करते थे क्योंकि उन्हें काम करना था, वे जीवित थे क्योंकि उन्हें जिन्दा रहना था।

…और इसीलिए जुम्मन साईं की कोठरी के पास आध्यात्मिक शान्ति के लिए स्टेशन के कुलियों और इक्केवालों का जमघट भी होता। बीड़ियाँ फुंकती और चिलमें सुलगतीं? इक्केवाले ज्यादातर मुसलमान थे और कुली हिन्दू, पर उनमें कहीं भी फरक नहीं था। सब पर जमाने की मार थी, सबके नासूर एक-से रिस रहे थे और सबके मसले समान थे। उन्हें धर्म-चर्चाओं से मतलब नहीं था, पर इससे मतलब जरूर था कि धर्म उन जैसे बदनसीबों के लिए क्या कहता है? वे सब ऐसे बैठ जाते जैसे मातम मनाने आए हों। गाड़ी आने का वक्त होता तो एक-एक कर सब उठकर चले जाते।

छोटे-छोटे झगड़े-टंटों के साथ यहाँ की जिन्दगी चलती थी। कभी-कभी हफ्तों बीत जाते और कोई बात न होती। सत्तार भी गफ़ूर के साथ-साथ जानवर कमाने लगा था। अब कसाई घर तक जाने का काम वही करता। बकरे पर नम्बर लेता और पर्ची के साथ गोश्त बाजार में पहुँचा देता। त्योहारों पर वह बिना लाइसेंस के ही घर पर चोरी-छुपे कमा लेता और बड़े आराम से रास बाजार में पहुँचा देता।

सत्तार को जैसे जानवर मारने में मजा आने लगा था। वह सलमा का पीछा अब भी करता। सलला भी कभी-कभी आँख छुपाकर उससे बात कर लेती। गोश्त बाजार से वह लौटता तो जनाने अस्पताल के फाटक के पास कुछ देर जरूर बैठता। जिन दिनों वह वहाँ काम करता था, तब कुछ लोगों से जान-पहचान हो गई थी। खास तौर से रतन से। रतन की साइकिल मरम्मत की दूकान थी, फाटक के पास। गाँव से साइकिलों पर आने वाले लोगों से वह मरम्मत के बदले में घी या दूध भी लेता था। उसे चरस का शौक था और अपनी काठ की दूकान में उसने सिनेमा स्टारों की तस्वीरें चिपका रखी थीं। उन तस्वीरों के गले में ट्यूबों की लम्बी-लम्बी मालाएँ पडी थीं।

उस दिन गोश्त बाजार से लौटकर सत्तार उसी की दूकान पर बैठ गया। रतन ने हाथ का काम रखते हुए पूछा, "क्यों, कब से मुलाकात नहीं हुई···?"

"मुलाकात! अब वो मुलाकात करना नहीं चाहती।" सत्तार ने सीधे से जवाब दे दिया।

"तो जबरदस्ती कर लो···डर काहे का। इधर से रात को लौटती है, रास्ते में पकड़कर मुलाकात कर लो···आखिर कहती क्या है?" रतन ने बीड़ी सुलगा ली थी।

"यही कहती है, तुम्हारा ख्याल मुझे हर वक्त रहता है। जब भी अकेले बैठती हूँ; तुम्हारे बारे में सोचती हूँ···" गहरी साँस लेकर सत्तार ने आगे कहा, "पर उसके रंग-ढंग समझ में नहीं आते। एक तरह से सोचता हूँ तो ठीक भी लगता है। उसका आदमी आ गया है, अब उसे मेरी जरूरत नहीं है, और हो भी क्यों? लेकिन समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ?"

"उसका आदमी क्या करता है?" रतन ने पूछा।

"फिरोजाबाद के चूड़ी कारखाने में कारीगर है।" सत्तार ने बताया, कुछ दिन रहकर फिर चला जाएगा।"

"तब काहे को परेशान है। वह फिर रास्ते पर आ जाएगी।" रतन ने भेद से कहा और सत्तार के चेहरे की ओर देखने लगा। सत्तार के मुख पर अनेकों भाव आ-जा रहे थे और उसके सामने वे दृश्य घूम रहे थे जिनमें कहीं न कहीं सलमा जरूर थी।

और एक दिन अस्पताल के फाटक पर सत्तार को देखकर सलमा भागी-भागी आई थी और सिर्फ इतना ही कहकर चली गई थी कि कल रात मुझे पीपल वाले घर में मिलना···एक अजीब सपने की तरह सब एकाएक गुजर गया था। धीरे-धीरे वह अस्पताल से लौटा था और अपनी गुमटी में चुपचाप बैठ गया था।

वह यही सोचता रहा था कि कोई खास बात जरूर है, नहीं तो सलमा इतनी उदास न होती; और शायद उसे इस तरह कल रात का बुलावा न देती।

दिन-भर वह इसी इंतजार में रहा कि कब रात हो और कब वह सलमा से मिले। मस्जिद वाली कोठरी में वह यही सोचता पड़ा रहा था। उसे लगता था कि अभी तक सलमा को उसने अच्छी तरह भर-आँख नहीं देखा है। रात वह उसे कच्चे आँगन में फैली चाँदनी में घसीट ले जायेगा···आसमान में बादल हुए तो भी चाँद का फूटता हुआ उजास तो होगा, उसी में वह सलमा को बहुत-बहुत प्यार करेगा। कोठरी में लेटे-लेटे वह सलमा के बार-बार देखे हुए चेहरे को याद करता तो लगता जैसे कुछ भी याद नहीं। वह झुंझला उठा था···।

सीलन-भरी कोठरी में उसका दम घुटने लगा। अभी तो रात में बहुत देर बाकी थी। अभी तो शाम भी नहीं हुई थी। शाम के बाद रात होगी···बस्ती के कच्चे घरों में पकते खाने की महक आएगी और बातचीत की आवाजें देर तक आती रहेंगी। फिर कोई गली में अपने लड़के को खोजता हुआ और गालियाँ देता हुआ निकलेगा और पीटते-पीटते लड़की को घर पकड़ ले जाएगा। कुछ देर बाद एकाध घरों से बरसात में फूले हुए किवाड़ों के बन्द होने की चरमराहट आयेगी। फिर टाट के पर्दों से छनकर आती हुई चिरागों की रोशनी गुल होगी और तब पास से पुल से गुजरती हुई ट्रेन की खड़खड़ाहट आयेगी। धीरे-धीरे स्टेशन का शोर डूब जायगा और बस्ती नींद में खो जाएगी।

यही सब सोचते-सोचते वह कोठरी से बाहर निकल आया था। कुंडी चढ़ाकर वक्त काटने के लिये वह रेल के पुल की ओर चला गया था। वहाँ चट्टानों पर बैठे-बैठे वह दिन ढलने का इंतजार करता रहा··· जब मन ऊब गया तो लौट पड़ा। कोठरी तक वापस आते-आते उसे लगा जैसे अँधेरा एकाएक जल्दी से उतर आया हो। मन को बड़ी राहत मिली ···और फिर जैसा उसने सोचा था, वैसा ही होता गया।···कोठरी में लेटे-लेटे उसके कान वक्त बीतने की सब आहटें सुनते रहे···सब आहटें आती रहीं और फिर सब आवाजें और आहटें डूब गयी थीं। यह कब हुआ उसे पता नहीं चला···।

और जब उसकी आँख खुली तो चौंककर उसने देखा···शायद चाँदनी फैली थी···तभी अजान की आवाज कानों में पड़ी—सुबह हो

चुकी थी। रातभर वह सोता ही रह गया था।'''यह हुआ क्या ? वह समझ ही नहीं पाया। यह कैसे हुआ और क्यों हुआ ? वह कतई विश्वास नहीं कर पा रहा था कि रात बीच चुकी है और वह कोठरी में ही सोता पड़ा रहा है। हड़बड़ाकर वह बाहर निकला, गली से होता हुआ सीधा सलमा के घर की तरफ गया'''दरवाजा बन्द था, कोई आवाज नहीं आ रही थी, सिर्फ अजान की तैरती हुई पुकार मस्जिद से आ रही थी।

बहुत पछतावा हुआ उसे। किस नशे में वह सोता रह गया। सलमा जरूर आई होगी और इंतजार करके लौट गई होगी। क्या सोचा होगा उसने ? मिलेगी तो क्या बताएगा ? और बताएगा भी तो वह यकीन नहीं करेगी'''लेकिन वह मिले तो'''।

और उसी रात के बाद सलमा बदल गई थी। साथ ही दूसरे दिन सत्तार को अस्पताल की नौकरी से जवाब मिल गया था।

* * *

उन्हीं दिनों आजादी का आन्दोलन देश-भर में जोर पकड़ रहा था। शहर में कुछ ऐसे लोग भी थे, जो राजनीति में भाग लेते थे और जिनकी जबानी पर गांधी, नेहरू और जिन्ना का नाम बार-बार आता था। यह ऊपरी तबका था, जो नीचे के लोगों से मिलता-जुलता नहीं था, सिर्फ नीचे तबके वालों में उनकी शोहरत पहुँचती थी। चिकवों की इस बस्ती के लोग सिर्फ यह जानते थे कि फलाने डॉ० भगवानदास हैं और वह जो खादी की धोती पहनते हैं—वो गुप्ता जी हैं।

सही बात यह थी कि उन्हें मालूम ही नहीं था कि आजादी कहाँ मिलती है ? वह किसके पास है और उसे कौन देगा ? लम्बी पराधीनता के बाद उन्हें सिर्फ यही मालूम था कि अंग्रेजों ने हमारे देश का सारा धन लूट-लूटकर विलायत पहुँचा दिया है और हम गरीब हो चुके हैं। अब वह पीढ़ी सामने आ चुकी थी, जिसने यह नहीं देखा था कि १८५७ में उन्हीं के पुरखों ने आजादी को बनाये रखने के लिये अपना खून बहाया था।

उन्हें केवल यही पता था कि हम गुलाम हैं और गुलामी की वजह से गरीब हैं।

सन् बयालिस के आन्दोलन ने उनकी आँखें खोल दी थीं···और उन्हें लगा था कि कुछ हो रहा है। शहर-भर में अजीब-सी सनसनी थी। यों साईं राजनीति और राजनीतिक बातों में दखल नहीं रखता था, पर उसने ही जाकर तब बताया था कि गांधी जी ने अंग्रेजों से कहा है कि वे हुकूमत छोड़ जाएँ और अपने देश चले जाएँ।

लोगों ने सुना था तो बात बहुत समझ में नहीं आयी थी। जाफर मियाँ बोले थे, "तो पुलिस भी बदल जाएगी?" उनके लिए यही सबसे बड़ा सवाल था, क्योंकि जब भी शहर में कोई चोरी-चमारी होती तो पुलिस वाले जाफर को जरूर घेरते थे। बदरी ने भी सवाल किया था, "क्या अंग्रेज इस तरह चले जाएँगे?" तो साईं ने अपनी अक्ल से बताया था कि यह सब इतना आसान नहीं है···देखो, क्या होता है? और बात उस वक्त वहीं रुक गई थी। लेकिन बस्ती के जवान लड़कों को जैसे ही खबर मिली, वे शहर पहुँचे और हंगामा खड़ा कर दिया। ठीक-ठीक उन्हें भी नहीं मालूम था कि ये सब तोड़-फोड़ क्यों कर रहे हैं, लेकिन उनके पास एक ही जवाब था—"डॉ० भगवानदास को पुलिस ने क्यों पकड़ा? हम आजादी लेंगे···पुलिस-राज हटाएँगे···।"

एक अजीब सनसनी थी और उस सनसनी में आजादी की भनक थी। सुभाषचन्द्र बोस के किस्से थे।

शहर का बाजार बन्द था, दूकानों के बाहर लोग बैठे थे। कचहरी, कोतवाली और तहसील पर पुलिस की तैनाती की वजह से लग रहा था कि कुछ होने वाला है···नीचे के तबके में धीरे-धीरे एक ही बात फैल रही थी—सुभाष बोस अपनी फौज के साथ कलकत्ता पहुँच गए हैं। कलकत्ता में अंग्रेजों को उन्होंने मार भगाया है और उनकी फौजें जय हिन्द का नारा लगाते हुए दिल्ली की तरफ बढ़ रही हैं···।

* * *

जिस वक्त डाकखाना जलाया गया, तब रात हो रही थी···लपटों की रोशनी चारों ओर फैल रही थी। लोगों के दिलों में खुशी भर रही थी क्योंकि इंतकाम का संतोष छोटा नहीं होता। जाती हुई रेलगाड़ियों पर पत्थर फेंकने के लिए लड़कों की कतारें रेलवे लाइन के आस-पास खड़ी रहती थीं। गलियों में गर्मागर्म बहसें होती थीं और बाजार में सन्नाटा छाया रहता था। एकाएक सन्नाटे को चीरती आवाजें आती थीं और किसी सरकारी इमारत से लपटें फूटने लगती थीं। अंग्रेजों ने जो नई बस्ती बसाई थी, उसमें बहुत कड़ा पहरा था, उधर जो भी जाने की हिम्मत करता, गिरफ्तार कर लिया जाता। लेकिन गिरफ्तारियाँ लोगों के उत्साह को नहीं रोक पाई थीं। तार काट दिये गये थे और कुछ इमारतों की दीवारों को तारकोल से काला कर दिया गया था।

ऊपर से यह सब एक जुनून ही लगता था··· क्योंकि आन्दोलन को चलाने वाले नेता लोग जेलों में बंद थे और उनकी गैरहाजिरी में जो जिसकी समझ में आ रहा था, कर रहा था। लेकिन इस जुनून और तोड़-फोड़ के पीछे आजादी की भावना का दौर-दौरा था। पूरा शहर इसमें शामिल था। यहाँ तक कि पुलिस भी खड़ी-खड़ी देखती रहती थी।

चिकवों की बस्ती में नौजवान लड़के उन दिनों सीना फुलाकर घूमते थे, क्योंकि उन्होंने तोड़-फोड़ में हिस्सा लिया था। साईं को यह सब बुरा लगता था, वह कहता था, "हमें क्या मिलना-मिलाना है? यह सब तो औरों के लिए है।" लेकिन सत्तार भीतर-भीतर बड़ी-बड़ी साजिशें करता रहा। किसी ने तो यहाँ तक कहा कि नदी के पुल पर सत्तार छुरी छुपाकर बैठता है···और इस इन्तजार में रहता है कि कोई अंग्रेज उधर से निकले तो मार दे। लेकिन उसके हाथ कोई शिकार नहीं आया।

सलमा ने जब यह सुना तो दिल दहल गया। सत्तार यह क्या करना चाहता है···कहीं किसी अंग्रेज ने पिस्तौल चला दी तो क्या होगा? बड़ी परेशानी थी उसे। उसका घरवाला मकसूद दिन-भर घर में पड़ा रहता था, इसलिए कहीं निकल भी नहीं पाती थी और मकसूद

का दोस्त, जो कि अपने को अलीगढ़ का सियासी कारकुन बताता था, वह भी दिन-भर खाता और पड़ा रहता था। सलमा बहुत बेताब थी लेकिन कोई चारा नहीं था। आखिर हारकर वह रतन की दूकान पर पहुँची थी, यही आसान तरीका था, क्योंकि वह अस्पताल आती ही थी और रतन की साइकिल की दूकान ऐन फाटक पर थी। रतन ने सलमा को अपनी दूकान पर देखा तो चौंक उठा। इतने बरसों में कभी सलमा ने उसकी दूकान की तरफ नजर भी नहीं उठायी थी। वह लपककर आ गया, "क्या है ?"

"सत्तार का कुछ पता है ?" सलमा ने पूछा।

"देखा तो था..." रतन ने हकलाते हुए कहा।

"मिले तो कह देना, मैं पूछ रही थी।" इतना कहकर सलमा ड्यूटी पर चली गई थी। लेकिन सत्तार फिर सलमा से नहीं मिला। रतन ने कहा तो उसने बस यही जवाब दिया—अब मिलकर क्या करूँगा...उससे कहना जब मर जाऊँ तो मेरी कब्र पर मिलने चली आए, वहीं मुलाकात होगी।"

सत्तार पड़ा-पड़ा यही सब सोच रहा था कि कोठरी के दरवाजे पर किसी की आहट हुई। बाहर निकलकर देखा तो नसीबन थी। सत्तार एकदम बोला, "अरे नसीबन बुआ, तुम ?"

"तेरा दिमाग खराब हो गया है क्या ?" नसीबन ने कहा।

"आखिर कोई बात भी हो।" सत्तार ने पूछा।

"काहे को जान देने को घूम रहा है—सुना, नदी के पुल पर जाकर बैठता है..." नसीबन कह ही रही थी कि सत्तार ने बाँह पकड़कर उसे भीतर कोठरी में बैठा लिया और बोला, "हाँ, बैठता तो हूँ...।"

"तेरा इरादा क्या है ?" नसीबन ने बात काट कर प्यार से झिड़कते हुए पूछा।

"इरादा ! इरादा तो कुछ भी नहीं है, पर इतना जरूर लगता है कि अगर एक भी अंग्रेज मार लिया तो दिल में ठण्डक आएगी...."

"उससे होगा क्या ?" नसीबन ने पूछा।

"यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन इतना मुझे पता है कि अंग्रेज हमारे

दुश्मन है—हिन्दुस्तान के दुश्मन हैं—और इन्हें मार भगाना हमारा फर्ज है। पूरा मुल्क आज मुखालिफत में उठ खड़ा हुआ है।"

"तुझे यह सब कैसे पता ?" नसीबन ने पूछा।

"सब खबरें शहर में आती हैं···तहसील के पास मुख्तार नियाज-अली का मकान है, वहीं यह सब पता चला। उन्होंने ही कहा था कि यही वक्त है जब हम अंग्रेजों को अपने वतन से खदेड़ सकते हैं।"

"तो तू अकेला क्या कर लेगा ?" नसीबन ने चिंता से पूछा।

"अकेला कहाँ हूँ तमाम लोग साथ हैं। आज तो शहर के ऐसे-ऐसे लोग साथ हैं, जिन्हें मैंने पहले देखा तक नहीं था। हम सब मिल-जुल-कर अपना काम तय करते हैं···" सत्तार ने नसीबन को बताया तो वह कुछ सोचती रही, फिर धीरे से बोली, "सुन···मेरे पास एक असली लोहे की गुप्ती है···हाथ में रखो तो छोटा-सा डंडा लगती है; खोल लो तो आधे हाथ का फल है उसमें। तू उधर आ तो मैं तुझे दे दूँ···किसी से कहियो मत, समझा।" फिर कुछ इधर-उधर की बातें करने के बाद पजावे की तरफ निकल गई थी।

* * *

दूसरे दिन एक और ही सनसनी थी। मस्जिद के अहाते में जुम्मन साईं ने एक बैठक की थी, जिसमें मदरसे के मौलवी साहब और बस्ती के अन्य मुसलमानों के अलावा सलमा का आदमी मकसूद भी था।

बस्ती के मसलों में हाथ बटाने का मकसूद का यह पहला ही मौका था। मकसूद ने उस छोटी-सी बैठक में, अपने बगल में बैठे हुए सियासी कारकुन का परिचय सबसे कराया, "ये यासीन साहब हैं, अलीगढ़ के सियासी कारकुन हैं। मुस्लिम लीग में काम करते हैं और मुसलमानों की भलाई की खातिर ही जगह-जगह घूमते हैं। जिन्ना साहब इन्हें इज्जत की नजरों से देखते हैं। यह आज आपसे कुछ बातें करना चाहते हैं।"

साईं ने सबको गौर से देखा और धीरे से सिर हिलाया। मस्जिद

के सहन में जहाँ कबूतर दाना चुग रहे थे, वहीं सत्तार न जाने कब आकर बैठ गया था। साईं की निगाह उस पर पड़ी तो उसने आँख से पास आने का इशारा किया, पर सत्तार वहीं बैठा रहा। उसे नीचे फर्श पर बैठने में दिक्कत भी होती, नसीबन की दी हुई गुप्ती वह कमर में छुपाये हुए था।

स्टेशन के इक्केवाले भी इस मजमें में हिस्सा लेने के लिए आये हुए थे।...इफ्तिकार इक्केवाला घुटनों पर बाँहें लपेटे बैठा था। उसके मन में न जाने कैसा संदेह रेंग रहा था। रह-रहकर वह यासीन, मकसूद और साईं को देखता और भीतर ही कसमसाने लगता...।

सत्तार मकसूद को बड़े गौर से आँख बचाकर ताकता था और उसके सामने सलमा का चेहरा घूम जाता था। वह यह यकीन ही नहीं कर पा रहा था कि इस मकसूद के लिए सलमा उसे छोड़ सकती है... आखिर इसमें है क्या? अजीब लफंगा तो लगता है। उसके साथी सियासी कारकुन यासीन की नजरों में एक तेजी और समझदारी जरूर झलक रही थी।

तभी उसके कानों में आवाज पड़ी। अलीगढ़ का सियासी कारकुन यासीन कह रहा था—"तो बात जंग की नहीं है। इस वक्त हमें उन भीतरी बातों को समझना है जो जिन्ना साहब कर रहे हैं। आप हिन्दुओं की चालों को नहीं समझते। हिन्दू कौम कभी हमारे साथ नहीं हो सकती। हमने हिन्दुस्तान पर सदियों हुकूमत की है। आजादी के बाद उसी का बदला वे मुसलमान कौम से लेंगे, यह बिल्कुल तय है...।"

इफ्तिकार जरा और कसमसाया। आखिर अपने को न रोक पाने के कारण वह बोल ही पड़ा, "लेकिन सुना है कि कांग्रेस हिन्दू-मुसलमान दोनों को साथ लेकर चलना चाहती है। वह यह फर्क नहीं करती।"

साईं की भौंहें टेढ़ी हो गईं, बोला, "कानगरेस तो हिन्दुओं की जमात है।"

यासीन ने सधी हुई आवाज में बात को सँभाला, "भई, बात यह

है कि यह गलतफहमी बहुतों को है। कांग्रेस अगर हमारी जमात भी होती, तो हमें लीग बनाने की जरूरत क्यों पड़ती। अगर हिन्दुओं के मन्दिरों में इबादत की जा सकती तो मस्जिदों की तामीर क्यों होती ? हिन्दू हिन्दू है और मुसलमान मुसलमान···।''

मकसूद ने इस मिसाल पर बड़े जोर से सिर हिलाया। सत्तार को भीतर ही भीतर बात तो अच्छी लगी थी पर मकसूद के सिर हिलाने की वजह से उसने ताईद नहीं की। बैठक में एक अजीब-सा रहस्य भरता जा रहा था। लगता था कोई बहुत बड़ी बात होने जा रही है।

कुछ रुककर यासीन ने बात आगे बढ़ाई—''एक भीतरी बात जो मैं आप सबको बताना चाहता था, वह यह है कि हुकूमते बर्तानिया ने हम मुसलमानों को यह यकीन भी दिलाया है कि जग में जीतने के बाद वे हमें पूरी मदद देंगे और अगर मुमकिन हुआ तो हमारा एक नया मुल्क भी होगा। शायद आपको मालूम हो कि वायसराय कमेटी के सर फिरोज खाँ साहब ने हिन्दुस्तान को पाँच हिस्सों में बाँटने की बात सामने रखी है, पर असल बात यह है कि भाइयों, हम मुसलमानों के लिए अलग हक चाहते हैं। हम उस बात को कतई नहीं मानेंगे जिसे गांधी जैसे हिन्दू नेता तय करेंगे।''

तभी साईं ने बात जोड़ी, ''हिन्दू नेता यह चाहते हैं कि वे मुसलमानों को साथ लेकर अभी तो अंग्रेजों से हुकूमत छीन लें, बस···। बाद में वे मुसलमानों को अँगूठा दिखा देंगे, यही उनकी चाल है।''

यासीन ने अगली बात कही, ''इसीलिए जिन्ना साहब ने इस आंदोलन को गलत बताया है और कहा है कि कोई भी सच्चा मुसलमान हिन्दुओं के इस आंदोलन में शिरकत न करे। और एक बहुत ही खास बात जिन्ना साहब ने कही है, वह यह कि मैं इस वक्त हुकूमते बर्तानिया से यह पक्का वायदा ले लेना चाहता हूँ कि लड़ाई के बाद हमें पाकिस्तान मिल जाएगा। अगर पाकिस्तान की शर्त मंजूर हो जाती है तो जिन्ना साहब सरकार में शामिल हो जाएंगे, वरना नहीं। तो भाइयो, इस वक्त जरूरत इस बात की है कि हम पाकिस्तान की माँग

को जोर-शोर से उठाएं, ऐसा कोई काम न करें जिसमें हमें हिन्दुओं के साथ शामिल समझा जाए…"

मकसूद की आँखों की चमक बढ़ती जा रही थी। वह रह-रहकर बीच में यासीन की बात की ताईद करता था, मौका पाते ही वह बोला, "फिरोजाबाद, टूंडला, आगरा, भोपाल वगैरह…सब जगह यही बातें सोची जा रही हैं, हिन्दुस्तान का बंटवारा होना है…।"

उसी की बात में गाँठ लगाते हुए यासीन ने और आगे बताया, "इसके लिए खून-खराबा भी हो सकता है। आसानी से हिन्दू इस तक्सीम के मसले को नहीं मानेंगे। हमें उनसे लोहा लेना पड़ेगा। जरूरत हुई तो हमें कुर्बानियाँ देनी पड़ेंगी, क्योंकि हिन्दुओं के दिलों में हमारे लिए एक नफरत है क्योंकि हमने यहाँ सल्तनतें कायम की थीं। हमारी कौम हुकूमत करने और इस्लाम को फैलाने के लिए ही जिन्दा है।"

और इसके बाद जोश की जो बातें उसने कही थीं, उनसे सुनने वालों पर एक अजीब-सा नशा छा गया था।

बैठक खत्म होने के बाद तरह-तरह की और बातें भी होती रहीं, जिनमें कुछ बड़ी सनसनीखेज भी थीं। साईं ने हौले से बताया था, "सुना जिला कन्नौज में आर्य समाजियों ने एक मुसलमान घराने को हिन्दू बना लिया है।"

"इतना ही नहीं, कानपुर में तो दिन-दहाड़े चार हिन्दू गुण्डे दो मुसलमान औरतों को भगा ले गए, आज तक उनका पता नहीं चला।"

"और सुना है कि उधर इलाहाबाद में बड़ा जबरदस्त दंगा हुआ है, जिसमें कई सौ लोग मारे गए हैं। पुलिस भी हिन्दुओं का साथ दे रही है।"

बड़ी देर तक मस्जिद के अहाते में ऐसी ही बातें होती रहीं। इन बातों के दौरान इफ्तिकार ही एक ऐसा था जो भीतर ही भीतर घुटता रहा। उसने एक बार धीरे से कहा भी, "असली लड़ाई तो गरीबी और अमीरी की है। मुल्क के तकसीम होने के हमें क्या मिल जाएगा?"

यासीन ने उसे समझाया था—"भाई जान, अपना मुल्क अपना ही

होता है। अभी आप सोच ही नहीं सकते कि अगर हिन्दुओं का राज हुआ तो इसी हिन्दुस्तान में हमें कितनी मुसीबतें और सितम सहने पड़ेंगे। हिन्दुओं की चाल ही यही है कि यहाँ के सारे मुसलमानों को फुसलाकर, दबाकर और जरूरत पड़े तो जबरदस्ती हिन्दू धरम कबूल करवाया जाए। आप इनकी बातों को नहीं समझते।''

और चूँकि ज्यादातर लोग यासीन की बातों को सही समझ रहे थे इसलिए इफ्तिकार को चुप रह जाना पड़ा था। सत्तार को बातें तो सही लग रही थीं, पर मकसूद के बीच में होने की वजह से वह उनमें शामिल होकर ताईद नहीं करना चाहता था।

और उस दिन की बैठक अगली जुमेरात तक के लिए बर्खास्त कर दी गई। मस्जिद की सीढ़ियों से नीचे उतरते हुए मकसूद ने यह भी बताया था कि यह यासीन के साथ इन्हीं बातों का प्रचार करने के लिए आस-पास के इलाकों में जा रहा है।

सत्तार जब अपनी कोठरी में आया तो उसका मन बहुत भारी था। उसके दिमाग में तरह-तरह के ख्याल आ-जा रहे थे। उसे यह लगता था कि शायद पाकिस्तान बनने से एक नई जिन्दगी की हदें खुल जाएँ। कुछ ऐसा हो कि उसे अपनी बेकारी और नाकामी से मुक्ति मिल जाए, एक नया रास्ता मिल जाये जो जिन्दगी को खुशहाल कर दे। पर रह-रहकर उसे यह भी भ्रम होता था कि यह सब कुछ होगा नहीं! कैसे होगा? करोड़ों मुसलमानों के बीच उसकी बिसात ही क्या है? कौन पूछेगा उसे? ...तभी मकसूद की वह बात कि वह बाहर जा रहा है, उसके दिमाग में एकाएक कौंधी थी...एक नरम-सा हाथ उसे सहला गया था और उसने तय किया था कि वह सलमा से मिलेगा...।

* * *

रात गहरी होकर बस्ती पर छा गई थी। दूर स्टेशन पर रोशनी हो गई थी और नजदीक नाले के पुल से गुजरती रेल की धमक और खड़खड़ाहट भी सुनाई पड़ रही थी। मस्जिद की मीनारें और गुम्बद

अँधेरे के सैलाब में डूब गये थे। इफ्तिकार सवारियों की तलाश में इक्का जोतकर स्टेशन की तरफ काफी पहले जा चुका था।

जब कोठरी में लेटे-लेटे उसे नींद नहीं आई तो सोचा कि नसीबन को उसकी गुप्ती ही वापस कर आये, क्योंकि अब वह हिन्दुओं के साथ मिलकर अंग्रेजों को मारने में मदद क्यों दे?

कोठरी से निकलकर उसके पैर नसीबन के घर की ओर नहीं उठे थे, वह सीधा उधर पीपल वाली गली में चला गया था। न जाने क्यों सलमा की एक आहट भर पा लेने के लिए वह बेताब-सा हो रहा था। सलमा के घर के बाहर से जब वह गुजरा तो उसने जरा-सी आहट लेनी चाही। एक मिनट सधकर उसने बातें सुनने की कोशिश की—फूले हुए दरवाजों की संधों से रोशनी फूट रही थी और कुछ बातचीत हो रही थी। तभी उसे सलमा की खिलखिलाहट सुनाई पड़ी और उसका मन बेहद उदास हो गया। उसे लगा कि रतन से सलमा ने मिलने की जो बात कही थी, उसमें कोई ईमानदारी नहीं थी। अगर वह सत्तार से मिलना ही चाहती थी तो अपने-आप भी मिल सकती थी। कुछ दूर जाकर वह फिर रुक गया। उसके दिल पर उस खिलखिलाहट से अब भी घूंसे से लग रहे थे और तब वहीं खड़े-खड़े उसने तय किया था—कि वह ऐसा कोई भी काम हरगिज नहीं करेगा जिसमें मकसूद का हाथ हो।

आधी रात गये वह परेशान-सा कोठरी में लौट आया था। नींद तब भी नहीं आ रही थी। तब बस्ती की कच्ची सड़क पर इफ्तिकार के इक्के की हलकी खड़खड़ाहट सुनाई पड़ी थी। जब वह मस्जिद की बगल से गुजरा तो सत्तार ने उसे पुकार लिया।

इफ्तिकार ने रासें खींचकर पूछा, "क्या बात है सत्तार?"

"कुछ नहीं इफ्तिकार भाई, आज पता नहीं नींद क्यों नहीं आ रही है।"

"यासीन साहब की बातें परेशान कर रही हैं?"

"नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। नींद न लगी हो तो आओ बैठो।"

पर इक्के से उतर कर आने में इफ्तिकार को काफ़ी परेशानी हुई थी। वह नशे में बुत था। जैसे-तैसे उसने घोड़े को वहीं खोल दिया था और पायदान में भरी घास उसके सामने डालकर सत्तार की कोठरी में घुस गया था।

"नीद की दवा दूँ।"

"है?"

"आ हो।"

"तो लाओ जरा।"

इफ्तिकार ने इशारे से उसे बताया था। पायदान की घास में से ही वह कच्ची का एक पौआ निकाल लाया। दोनों बड़ी देर तक वहीं बैठे पीते रहे और जब नशा सत्तार पर हावी हो गया तो बोला, "इफ्तिकार भाई जी करता है कि सबसे पहले मकसूद के सीने में छुरा उतार दूँ।"

"क्यों?"

"बस, यूँ ही।"

इफ्तिकार ने बात को समझा था, बोला, "सलमा की वजह से।"

कच्ची का घूंट लेते हुए बोला था सत्तार, "तुमने असल बात पकड़ ली इफ्तिकार भाई! मकसूद की बातों से मेरी नाइत्तफाकी नहीं है, पर उसके साथ मेरी निभ नहीं सकती।"

इफ्तिकार एक मिनट चुप रहा। मैली टोपी के किनारे दबी हुई बीड़ी निकाल कर उसने सुलगाई और बैठा पीता रहा। फिर जैसे बहुत सोच-समझ कर बोला था, "सत्तार भाई, हो चाहे जो कुछ, पर मुझे लगता है कि इन बातों से गलतफहमियाँ फैल रही हैं…अब मुसलमान को कहाँ जाना है? यही मुल्क है और लगता मुझे यह है कि अगर पाकिस्तान बना भी तो अपने किसी काम नहीं आयेगा। पाकिस्तान में भी हमें तो इक्का ही हाँकना पड़ेगा।"

"सनीमा की गेटकीपरी करना—नूरजहाँ के गाने सुनना…।" सत्तार मौज में आ गया था, "सितारा का नाच देखना। क्या नाचती है सितारा…"

इफ्तिकार भी सन्नाटा महसूस कर रहा था, "पाकिस्तान बना तो यह सब भी पाकिस्तान चलेंगी ? खुदा कसम ?"

"और पाकिस्तान काहे के लिए बन रहा है ? इन्हीं सबको ले जाने के लिए तो बन रहा है। क्या गला पाया है नूरजहाँ ने ?" सत्तार बकता जा रहा था, "भई, अपन तो जान दे सकते हैं नूरजहाँ के लिए।"

"तब सलमा का क्या होगा ?" इफ्तिकार ने मजाक किया था; पर नशे की झोंक में भी सत्तार को जैसे होश का एक झटका लगा था। आखिरी घूंट लेते हुए बोला, "सलमा अगर पाकिस्तान जाएगी तो मैं भी जाऊंगी, नहीं तो नहीं...समझे। मुझे तो लगता है कि वह पाकिस्तान जरूर जायेगी।"

"वह जायेगी तो मकसूद के साथ ही।" इफ्तिकार ने सुझाया था। सत्तार यह सुनकर उदास हो आया था। और फिर वे दोनों वहीं कोठरी के फर्श पर लेट गये थे।

* * *

सुबह अभी अच्छी तरह हुई नहीं थी। फर्रुखाबाद की तरफ जाने वाली गाड़ी जा चुकी थी। उसकी धमक भी दोनों ने नहीं सुनी थी। मकसूद और यासीन सुबह की गाड़ी से अहमदाबाद—फर्रुखाबाद की तरफ चले गये थे। सलमा ने सुबह उठकर ही उनके लिए चाय बनाई थी और उन्हें गली के मुहाने तक छोड़ने आई थी।

उस वक्त तक बस्ती में कोई जागा नहीं था। चारों ओर धुन्ध छाई हुई थी। सलमा जब गली के मुहाने से लौटने लगी तो उसे सत्तार का ध्यान आया था। न चाहते हुए भी वह मस्जिद की तरफ चली गई थी। बहाना यही था कि एक रास्ता उधर से भी स्टेशन को जाता है। सत्तार की कोठरी के सामने से वह गुजरी तो इफ्तिकार का इक्का वहीं बाहर खुला देखकर उसे कुछ शक भी हुआ—कहीं सत्तार चला तो नहीं गया ?

सुबह-सुबह ही हाथ में एक संटी लिए नसीबन मुर्गियों को दरबे से निकाल कर घूरे की तरफ ह्'कती हुई ले जा रही थी। उसने सलमा को पहचाना तो डग भरती हुई पास पहुँच गई, "इतने सबेरे कहाँ सलमा ?"

सलमा सकपका गई। ठिठकते हुए बोली, "इधर आई थी उन लोगों को छोड़ने, अब घर जा रही हूँ···आप बड़ी जल्दी निकल पड़ीं।"

नसीबन ने उसे गौर से देखा था और मुस्करा दी थी···आज यह इफ्तकार का इक्का उधर कैसे खुला हुआ है ?" कहते-कहते उसने बढ़कर सत्तार की कोठरी पर दस्तक दी थी। सलमा चलने लगी थी तो उसने रोक लिया था, "अरे, मैं भी उधर ही चल रही हूँ, रुक तो !"

चाहते-न-चाहते हुए भी सलमा रुक गई थी। नसीबन के साथ होने से हौसला लौट आया था।

तभी उनींदा-सा सत्तार बाहर निकल आया। सलमा पजावे की तरफ ताकती हुई खड़ी थी। सत्तार ने आँखें मलकर दोनों की ओर देखा और एकदम बोला, "सपना देख रहा हूँ ?"

नसीबन फिर मुस्कराई, "यह इक्का यहाँ क्यों खुला है ?"

"इफ्तिकार भाई इधर ही सो रहे हैं। रात यहीं रुके थे···" कहते-कहते वह सलमा को ताक रहा था। सलमा ने एक बार भर आँख उसे देखा। उसकी आँखों में उदासी भरी हुई थी। सत्तार को वे आँखें दूर तक छेदती चली गईं। उन आँखों में वह सब नहीं था जिसे सोच-सोच-कर उसका मन डूबता था। रात की खिलखिलाहट की कोई गूँज भी उनमें नहीं थी। ··उनमें वही झिलमिलाहट थी, जो उसने पहले कभी देखी और महसूस की थी।

"अच्छा, मैं चल रही हूँ; आज जल्दी ही अस्पताल जाना है।" नसीबन से कहकर सलमा चलने लगी थी······।

और दो मिनट बाद ही सत्तार कुर्ता पहनकर अस्पताल वाली सड़क पर सलमा से पहले ही पहुँच गया था। और जब सलमा आती दिखाई दी तो उसका दिल धड़कने लगा। वह समझ नहीं पा रहा था कि आज

सलमा से बात कैसे शुरू करेगा ? उसे रोकेगा कैसे ? उसे क्या कहकर पुकारेगा ? इन थोड़े-से दिनों में ही रिश्ते कितने बदल गए थे !

तभी सलमा पास आ गई थी। सत्तार ठिठका खड़ा रह गया था। सलमा एक नजर उस पर डालकर आगे बढ़ गई थी।

सत्तार बहुत हिम्मत करके उसके पास पहुँचा था। कुछ कदम वे साथ-साथ चले थे, पर बात मुँह से नहीं निकल पा रही थी। आखिर बड़ा जोर लगाकर सत्तार ने पूछा था, "अस्पताल जा रही हो ?"

"हूँ।" सलमा मुस्करा दी थी। "क्यों ?"

"कुछ नहीं।" वह और पास आ गया था, "तुमने मुझे बुलाया था ?"

"नहीं तो।"

"तो मैं जाऊँ ?"

"जाओ।"

"इस तरह मैं नहीं जाऊँगा···।"

सलमा चुप रही।

"अगर पाकिस्तान बना तो तुम···जाओगी ?"

सलमा हँस दी और अपनी बेहूदी बात पर सत्तार को भी झिझक लगने लगी। उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि और क्या बात करे, जैसे सारी बातें चुक गई थीं।

और अस्पताल के फाटक पर पहुँचने से पहले सलमा ने सत्तार से मुस्कराते हुए कहा था, "दोपहर में डाकखाने के पास मिलना···मुझे उधर काम है।" इतना कहकर वह तेजी से फाटक में घुस गयी थी। सत्तार कुछ देर खड़ा ताकता रहा था। फिर उसकी नजर रतन की दूकान की ओर चली गई जो अधखुली थी। बहुत दिन हो गये थे रतन से मिले। वह लपककर सड़क के पार पहुँचा तो रतन को देखकर एका-एक पहचान नहीं पाया। वह संघियों का खाकी नेकर पहने, पेटी और काली टोपी लगाए खड़ा था। उसकी बगल में एक आदमी और खड़ा था, उसके हाथ में लाठी थी; उसकी भी वर्दी वही थी और वह रतन को समझा रहा था, "औरंगजेब ने जो अत्याचार किये हैं, हिन्दू-धर्म को

जिस तरह भ्रष्ट किया है, उसी का बदला तो लेना है। हमारी परम्परा है, राणा प्रताप की, शिवा जी की, जिन्होंने म्लेच्छों से कभी समझौता नहीं किया'''।"

तभी रतन ने धीरे से पूछा, "गठनायक जी, यह म्लेच्छ तो मुसलमान ही हैं न ?"

"हाँ। भारतवर्ष हिन्दू राष्ट्र है। इस आर्य देश के टुकड़े हों, यह'''"

तभी सत्तार ने आगे पहुँचकर कहा, "रतन भाई, सलाम !"

रतन ने उसे देखा और गठनायक की तरफ देखकर इस तरह नजरें घुमा लीं, जैसे वह उसे पहचानता ही न हो। गठनायक जी ने कड़ी नजरों से सत्तार को देखा और अगली बात समझाने लगे, "शाम को शाखा में महेन्द्र और उत्तर के सब लड़कों को लेकर आना'''गुरु पूर्णिमा को उत्सव मनाया जायेगा, उसकी तैयारी भी होनी है'''समझे। अच्छा बन्धु, नमस्कार !"

"नमस्कार !" रतन ने कहा और गठनायक जी चुस्ती से शहर की ओर चले गए।

सत्तार अचकचाया-सा खड़ा देखता रहा। शहर में उसने संघियों को देखा था और उसके कानों में यह भनक भी पड़ी थी कि संघी मुसलमानों के बहुत खिलाफ हैं। कुछ क्षण तो वह सकते में खड़ा रह गया था पर रतन से भी दोस्ती तो थी ही। उसने आगे बढ़कर पूछा, "क्यों रतन भाई, आजकल बड़ी जल्दी दूकान खोल देते हो ?"

"हाँ, शाखा से लौटता हूँ तो खोल लेता हूँ।" अब तक रतन टोपी उतारकर कील पर टाँग चुका। नेकर बदलकर अपना पुराना पाजामा पहनने जा रहा था। सत्तार खड़ा हुआ दूकान में नजर दौड़ाने लगा। उसे दूकान कुछ बदली-बदली लगी।

सिनेमा के पोस्टरों की जगह दिल्ली में छपे वह कलेण्डर वहाँ लटक रहे थे, जिनमें महाराणा प्रताप, बंदा बैरागी और शिवाजी आदि की तस्वीरें थीं। तभी रतन ने पूछा था, "क्या हाल है मियाँ ?"

मियाँ !'''सुनकर सत्तार तिलमिला गया था। उसने रतन की ओर हिकारत से देखा था और यह अंदाज किया था कि एक पटक में पानी

माँग जाएगा, पर तिलमिलाहट दबाते हुए उसने उसी व्यंग्य से जवाब दिया था, "हाल ठीक है पंडित की औलाद।"

"लैला कहाँ है ?" रतन ने मजाक में बात टाल देनी चाही थी। सत्तार उसके बदले हुए रुख को ताड़ गया था, पर सलमा को लैला कहकर पुकारना उसे कुछ अच्छा नहीं लगा था।

"अरे यार छोड़ो, उसकी बात।" सत्तार ने बात बदली। कपड़े बदलकर रतन से रिम सीधी करने के लिये औजार सँभाले। एक मिनट पहले हुई बातों की गूँजें दोनों ही दबा जाना चाहते थे।

"हूँ, लो।" सत्तार ने दो बीड़ियाँ सुलगाकर एक रतन की ओर बढ़ा दी। रतन ने इनकार कर दिया।

"क्यों, कब से छोड़ दी ?"

"ऐसे ही।"

"पी यार।"

"नहीं···साली तन्दुरुस्ती खराब करती है।"

"तुझसे तगड़ा तो मैं ही हूँ।"

"हाँ बेटे ! हिन्दुस्तान का माल खाते हो, तगड़े क्यों नहीं होंगे ? रतन बोला !

सत्तार उसकी बात के डंक को तोड़ देना चाहता था, उसने गुस्से से रतन को देखा और बोला, "किसी से माँगकर नहीं खाते बेटा ! अपने हक का खाते हैं, वह हक जो सदियों पहले हमारी कौम ने जीता था। समझे ?"

तभी एक दूधवाला पंक्चर साइकिल लेकर आ गया और रतन उसमें उलझ गया, पर सत्तार को खड़ा देखकर वह बराबर बड़बड़ाता रहा, "मियाँ, अब हिन्दुस्तान में मुसलमानी राज्य के सपने देखना छोड़ दो। वह जमाने लद गए।"

सत्तार सुनता हुआ हिकारत से हँसता रहा। पर भीतर ही भीतर वह एक बहुत बड़ा अंतर महसूस कर रहा था। आखिर वह रतन की दूकान से हटकर दूर चला आया।

सराय की ओर जानेवाली सड़क पर चलते हुए उसे अपने चारों तरफ

एक ऐसा सैलाब-सा नजर आ रहा था, जिसमें नफरत के कीड़े बिलबिला रहे थे—जाने-पहचाने लोगों के मुर्दा चेहरे उतराते हुए बहते जा रहे थे—वे चेहरे, जिन्हें देखकर अभी तक इंसान जीता आया था—जिनमें प्यार और अपमान था। यह सब क्या हुआ है? लोगों ने एकाएक वे चेहरे उतारकर क्यों फेंक दिए हैं?

और सचमुच तब बस्ती में नफरत का एक भयंकर सैलाब आया था। सड़कें वही थीं, लोग भी वही थे, दूकानों में भरी हुई चीजें वही थीं—बस्ती के मकानों की दीवारें वही थीं—

पर उन पर इश्तहार नये थे।

मकानों पर फहराते हुए झण्डे नये थे।

घरों में टाँगनेवाले कलेण्डर नये थे।

टोपियों को पहनने का शौक नया था।

सोचने-समझने का नजरिया बदला हुआ था।

कस्बे से निकलने वाले दो पेजी अखबारों की आवाज बदली हुई थी।

पता नहीं क्या हुआ था बस्ती को? ऊँचे-ऊँचे इमली-नीम के पेड़ों पर लम्बी-लम्बी बल्लियाँ लगाकर लीग और हिन्दू महासभा के झण्डे फहराये गये थे। घरों पर भी छोटे-छोटे ॐ के और हरे झण्डे नजर आने लगे थे। खानकाह में रंगरोगन हुआ था और उसके फाटक पर बहुत बड़ा चाँदतारा बनाया गया था। शहर के आर्यसमाजियों ने सब दीवारों पर गेरू से 'ॐ' लिखवा दिया था। प्राइमरी स्कूलों के अहातों में संघी नौजवान कवायद करते और लाठियाँ चलाना सीखते थे। वे हिन्दी ऐसे चबा-चबाकर और गरूर से बोलते थे कि औरों के लिये समझना ही मुश्किल हो जाता था।

जगह-जगह दूकानों पर लखनऊ-अलीगढ़ से छपे पर्चे आते थे और नागपुर-पूना से छपी तस्वीरें आती थीं। पुस्तकालयों में बाँके मराठों और राजपूत वीरों की जीवनियाँ भर गई थीं। बच्चों ने एकाएक अपने पूर्वजों को पहचाना था। और काली टोपी वाले गाँधी जी पर बिगड़ते थे—

'म्लेछों को सर पर चढ़ाकर आर्यभूमि को, हिन्दुत्व को अपमानित किया जा रहा है।'

और उधर मुसलमानों के मुहल्लों में इन बातों से तरह-तरह की अटकलें लगाई जाती थीं। और उधर चिकवों की उस बस्ती में साईं समझाता था—'इस्लाम खतरे में है।'

सत्तार यह सब सोच-सोचकर पागल हो जाता था—यह सब क्या था जो उसके दिलो-दिमाग में पिघले सीसे की तरह भरता और वहीं जमता जा रहा था।

जब वह सराय के नुक्कड़ पर पहुँचा तो अब्दुल पतंग वाले ने उसे रोक कर खबर दी थी, "खानकाह में आज रात एक मीटिंग है। तमाम मुसलमानों का शरीक होना जरूरी है। अपनी तरफ कह देना, लोग एक साथ न आएँ, अलग-अलग आएँ।" और इतना कहकर वह चला गया था।

उसी परेशानी में सत्तार बस्ती की तरफ लौट गया। दोपहर में सलमा से मिलने की बात थी। वक्त तो काटना ही था। कहीं और जाने को दिल नहीं कर रहा था, तो वह नसीबन के घर पहुँच गया। वह मठ-रियाँ तल रही थी। सत्तार को देखते ही खिल गई, "आ सत्तार, ले मठरियाँ खा।" कहते हुए नसीबन ने वहीं पड़ी जूठी तश्तरी में आठ-दस मठरियाँ रख दीं। बाकी मठरियाँ उसने एक गंदे कपड़े में लपेटीं और चलने लगी तो सत्तार ने पूछा, "कहाँ जा रही हो?"

"बच्चन के घर तक।"

जिस बेबाकी और खुलेपन से नसीबन ने बच्चन का नाम लिया था, वह सुनकर सत्तार को अचम्भा हुआ था। धीरे से बोला, "बच्चन और तुम्हें लेकर लोग तरह-तरह की बातें करते हैं।"

नसीबन हलके से मुस्करा दी। सर पर ओढ़नी डालकर वह निकल गई। नसीबन के उस कच्चे घर में वह अकेला रह गया था।

दूर पर शायद सलमा का अंधा बाप कोई ढोलक मढ़कर बजा रहा था। आस-पास घरों से चमड़ा कमाने की सुरसुराहट और छुरियों की

चाल की हलकी फुसफुसाहट आ रही थी। उधर थोड़ी दूर पर मकतब में बच्चों के पढ़ने की आवाजें भी आ रही थीं।

लौटकर नसीबन आयी तो घर में घुसते ही शिकायत-भरे लहजे में बोली, "सत्तार, तू सलमा को नजात क्यों नहीं दिलवाता ?"

"मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"तू ही सब कुछ कर सकता है—आखिर तुझे लेकर सलमा ने इतनी बदनामी उठाई है। बस्ती-भर में उसकी इतनी थुक्का-फजीहत हुई है, यह सब क्या उसने इसीलिए उठाई थी ?"

"क्या पता किसलिए उठाई थी ! मैं तो हर तरह से तैयार था, पर वह बदल गई। तुम्हें तो मालूम है···।"

"उसके दुःख को तू नहीं समझ सकता सत्तार।"

"क्यों, ऐसी क्या बात है ?"

"है···।"

"मुझे बताओ, तभी तो मैं कुछ कर सकता हूँ।"

"तुझे तो पता है कि उसका आदमी उसे छोड़कर चला गया था।"

"पर अब तो उसका आदमी आ गया है। मुझे तो वह खुश दिखाई पड़ती है। उसी की खातिर उसने मुझसे मिलना-जुलना तक छोड़ दिया···।"

"तू नहीं समझेगा उसके दर्द को।"

"उसे किस बात का दुःख है ? मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं देखी···।"

"अब क्या बताऊँ तुझे···जबान पर बात भी तो नहीं आती।" इतना कहकर नसीबन बन्ने की कमीज में बटन टाँकने लगी थी। सत्तार इस गुत्थी को सुलझा नहीं पा रहा था। इधर-उधर की तमाम बातें सोचने के बाद उसने पूछा था, "मकसूद मियाँ क्या उसके साथ बुरी तरह पेश आते हैं ?"

"तुमने मकसूद को अच्छी तरह देखा है ?"

"खास खयाल तो नहीं किया—तुम पहेलियाँ क्यों बुझा रही हो, जो बात है, साफ-साफ बताओ न !" सत्तार उतावला हो रहा था।

"तुमने उसके रंग-ढंग देखे हैं ?"

"ओफ हो !"

"मैं कहूँ कैसे···कैसे समझाऊँ तुझे···?"

"अरे, तो उसमे कोई कमी है ?"

"उसका बनना-सँवरना देखा है ?"

"तो इसमें क्या बात है ?"

"वो जो सियासी कारकुन यासीन उसके साथ है न—उसके ताल्लुकात देखे हैं उससे ?"

"मैंने तो यासीन को उस दिन मस्जिद में ही पास से देखा था, और तो कोई मौका आया नहीं।"

"सलमा यह सब किससे कहे···?"

"क्या यासीन सलमा···" सत्तार बात कहते-कहते रुक गया था। वह स्थिति को कुछ-कुछ भाँप रहा था। उसके तन-बदन से चिनगारियाँ फूटने लगी थीं। पर तभी नसीबन ने बहुत सँभालकर कहा था, "तू जो बात सोच रहा है, वह नहीं है। यासीन और सलमा का कोई मामला नहीं है। बात असल में यह है कि सत्तार कि, मकसूद के रंग-ढंग ही अजीब है। उस दिन रो-रोकर सलमा ने बताया था—शाम होते ही मकसूद औरतों की तरह सजता है। आँखों में काजल डालता है, अपने गाल पर मस्सा बनाता है। बालों में तेल डालता है। आईने के सामने खड़े होकर बालों में छल्ले बनाता है, गालों पर भी लाली पोतता है और गिलौरियाँ दबाकर यासीन के पास जा बैठता है। तब दोनों शराब की बोतल खोलकर बैठ जाते हैं। उनकी रंगरेलियाँ चलती हैं और सलमा मक्के भून-भूनकर लाती है - कलेजी तलकर लाती है — यासीन मकसूद को अपने गिलास से शराब पिलाता है···।

"और सलमा यह सब देखती है। खून के आँसू रोती है— उन्हें यह सब करते हुए देखकर भी बर्दाश्त करती है। रात गए तक यह सब चलता रहता है—और सलमा शरम की मारी रोती-रोती जब सो जाती है तो आधी रात के बाद मकसूद उसके पास आता है···।" इतना कहकर नसीबन चुप हो गई थी।

सत्तार अवाक् सुन रहा था ।

कुछ देर तक दोनों चुप रहे । घृणित-सा सन्नाटा छाया रहा । सत्तार के मुँह से जैसे जबान गिर गई थी । आखिर नसीबन ने ही वह खामोशी तोड़ी थीं, "कोई औरत यह सब कुछ कैसे बर्दाश्त कर सकती है ? बर्दाश्त करने की बात तो दूर, सोच भी नहीं सकती । अजीब साँसत में फँसी है सलमा "

सत्तार अब भी चुप था ।

"यही फिरोजाबाद में होता था । सलमा तो यहाँ तक बताती थी कि फिरोजाबाद में तो वह चूड़ियाँ तक पहनकर बैठता था । और सलमा जब बिगड़ती थी, तो उसे बुरी तरह मारता था । एक रोज तो उसने कैंची लेकर सलमा के बाल तक काट डाले थे । तुम्हीं सोचो सत्तार—कोई औरत कैसे इस तरह के आदमो के साथ चल सकती है…"

सत्तार के सामने उस रात मस्जिद में बैठे मकसूद और यासीन के चेहरे घूम रहे थे । मकसूद के लम्बे-लम्बे बाल और यासीन को देखने का तरीका ! जैसे एक-एक बात साफ होती जा रही थी ।

"मुझे यकीन ही नहों होता ।"

"तो सलमा से खुद पूछ लेना । उसने तो हजारों बातें बताई थीं, उन्हें तो मैं जबान पर भी नहीं ला सकती ।"

"तो सलमा उसे छोड़ क्यों नहीं देती ?"

"यह इतना आसान तो नहीं होता ।"

"तो मैं उसे लेकर कहीं भाग जाऊँगा ।"

"कहाँ ?" नसीबन ने हल्के से मुस्कराते हुए पूछा था ।

"पाकिस्तान ।"

नसीबन के चेहरे पर एकाएक कई रंग आए और चले गए । आखिर उसने बड़ा सब्र करके पूछा, "कहाँ है पाकिस्तान ?"

"बनेगा । कायदे आजम लेकर छोड़ेंगे ।"

"तो चले जाना ।" नसीबन ने बड़ी मायूसी से कहा था ।

"सब मुसलमान चलेंगे पाकिस्तान ।"

"क्यों ?"

"सुना है उधर सूबे के दूसरे शहरों में मुसलमानों को मारने के लिए हिन्दू बड़ी तैयारियाँ कर रहे हैं। वहाँ काली टोपी वाले बन्दूकें चलाना सीख रहे हैं।" सत्तार बोला।

"वह यासीन भी तो मुसलमानों में तैयारी करवा रहा है।" नसीबन ने कटाक्ष किया। यासीन का नाम सुनते ही सत्तार का मुँह बिगड़ गया। यासीन और मकसूद के जोड़े की बात ध्यान में आते ही उसका मन उधर से विरक्त हो गया।

एकाएक वह कोई जवाब नहीं दे पाया था। बात बदलने के लिए बोला, "आज सलमा से मिलना है।"

"तो इधर-उधर क्यों मिलता है? यहीं आकर सीधे से बात कर लिया कर। मुझसे तो उसका दुःख देखा नहीं जाता।" नसीबन यह कह ही रही थी कि कूदते-फाँदते उसके लड़के आ गए।

सलमा से मिलने का वक्त हो गया था। डाकखाने की ओर जाते-जाते उसने सारी बातें सोच डाली थीं। वह सलमा से क्या-क्या कहेगा, आगे क्या करेगा...

सलमा को लेकर वह नसीबन के घर चला आया था। घर में सन्नाटा था—नसीबन के लड़के बाहर खेलने चले गए थे और नसीबन बच्चन के घर चली गयी थी। पश्चिम की ओर जाते सूरज की किरणें तिरछी होकर घर पर से गुजर चुकी थीं—दूर आसमान में चीलें उड़ रही थीं—उस सन्नाटे में उन्हें साँसों की आवाज तक सुनाई पड़ रही थी—सत्तार ने उसे अपने पास खींच लिया था और दीवार की तरफ देखते हुए बोला था, "सलमा! इतने जुल्म क्यों सहती हो?"

"तो और क्या करूँ?"

"इससे बाहर नहीं निकल सकती?"

"अब और कोई रास्ता नहीं निकल सकता।" सलमा ने बहुत गहरी साँस लेकर कहा था और उसकी आँखें डबडबा आई थीं। कुछ देर बाद सलमा ने कहा था, "सत्तार, पता नहीं कौन-सी मजबूरियाँ हैं जो कुछ भी करने से रोकती हैं। चाहते हुए भी वह नहीं कर सकती जो करना चाहती हूँ।"

"ऐसी क्या बात है ?"

"वह मेरे पैरों पर सर रखकर रोता भी है—बहुत रोता है, तब मेरे मन से सब कुछ धुल जाता है—बेबस जितनी मैं हूँ उतना ही वह भी है। लेकिन कभी-कभी इतनी नफरत होती है कि जी चाहता है खुदकुशी कर लूँ—लेकिन अब तो वह भी नहीं कर सकती।"

"तो कोई ऐसा रास्ता ढूँढ़ लो जिससे यह परेशानियाँ दूर हो जाएँ। हम दोनों चुपचाप यहाँ से चले चलें।" सत्तार ने बड़ी गहराई से कहा था।

"मैं कहीं नहीं जा सकती।"

"तुम्हारी यही बात तो मैं नहीं समझ पाता।"

"तुम नहीं समझ पाओगे सत्तार…आदमी हो न…।"

"तो तुम मुझे बताओ न ?"

"मेरे पेट में बच्चा है।"

सत्तार सन्न रह गया था। उसकी अक्ल चकरा गई थी। पर तभी वह बिफर उठा था, "तुम झूठ बोलती हो।"

"मैं सच कह रही हूँ सत्तार !" कहते-कहते सलमा फूट-फूट कर रो पड़ी थी। और उन आँसुओं से नहाई सलमा उसे बहुत पाक लगी थी—बहुत सहनशील लगी थी।

पर दूसरे ही क्षण संदेहों की छायाएँ उसकी चेतना पर मँडराने लगी थी। मकसूद का बच्चा कैसे हो सकता है—और उसे लगा था कि सलमा अपने किसी बहुत बड़े रहस्य को छिपाए हुए है। तब वह उसे बहुत ही हीन, गिरी हुई और नापाक लगी थी। और उसने अपने सब सहारे टूटते हुए महसूस किये थे।

सन्नाटा और भी गहरा हो गया था। और घर में अँधेरा भरने लगा था।

"अच्छा सलमा, अब जाओ—बहुत देर हो गई है—" सत्तार ने अनजाने ही कहा था।

और सलमा उठकर चुपचाप बाहर निकल गई। सत्तार खड़ा-खड़ा देखता रह गया। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया था।

सत्तार उसी परेशानी में अपनी कोठरी में चला गया और जाकर

लेट गया। उसके सामने धुंध छाई हुई थी। कोई भी चीज साफ नजर नहीं आ रही थी। हर तरफ एक शोर था—ऐसा शोर, जिसमें कोई भी आवाज पहचानी नहीं जा रही थी।

* * *

और पूरी बस्ती में भी ऐसा ही एक खामोश शोर छाया हुआ था। असमंजस, आशंकाओं और संदेहों का! दूकानें उसी तरह खुलती थीं। शहर का कारबार उसी तरह चलता था—उसी तरह अनाज मंडियों में गाड़ियाँ आती थीं। घरों में कथाएँ और मीलाद शरीफ हो रहे थे, पर कुछ ऐसा था जो टूट रहा था, जिसे बयान नहीं किया जा सकता था।

बाहर से जो खबरें आती थीं उनका रूप यहाँ दूसरा ही होता था—यहाँ तक आते-आते उनका रंग ही बदल जाता था। लड़ाई की खबरों में सभी की दिलचस्पी थी। पर जब जापानियों के कदम डगमगाने लगे और युद्ध में अंग्रेजों की जीत दिखाई देने लगी तो लोगों में अजीब-अजीब प्रतिक्रियायें हुईं।

आजाद हिन्द फौज के किस्से इस छोटे-से शहर तक भी पहुँच गए थे और बड़ी गरमा-गरमी पैदा कर रहे थे। कुछ देर के लिए सबका ध्यान अपने भेद-भाव भुलाकर उन्हीं खबरों की ओर लग गया था। गलियों में लड़के कहते फिरते थे—"तुम मुझे खून दो। मैं तुम्हें आजादी दूंगा।"

और कभी-कभी तो लड़के लाइन बनाकर गलियों में परेड करते थे—"कदम-कदम बढ़ाए जा, खुशी के गीत गाए जा। यह जिन्दगी है कौम की, तू कौम पर लुटाए जा।"

जब शहर में अँधेरा उतरने लगता था और सड़कों के छोर काली धुंध में छुप जाते थे, तो बच्चों के यह तराने रोंगटे खड़े कर देते थे। पर वहाँ चिकवों को साईं ने समझाया था, "हमें इनसे क्या लेना-देना? अगर आजाद हिन्द फौज ने हिन्दुस्तान की हुकूमत जीत ली तो क्या होगा? राज तो हिन्दुओं का ही होगा! अंग्रेजों पर भी भरोसा नहीं किया जा

सकता। तुर्की के खलीफा से वायदा करके क्या सलूक किया था इन्होंने ?— हम सिर्फ अपनी कौम पर भरोसा कर सकते हैं। हिन्दू और अंग्रेज दोनों दगा देंगे हमें।''

सत्तार पेड़ के नीचे बैठा बीड़ी पी रहा था। साईं की बगल में बैठे मकसूद और यासीन को देखकर उसका खून खौल उठा था। वे दोनों कई दिन पहले लौट चुके थे।

उसने वहीं बीड़ी मसलकर ललकारते हुए कहा—''पर साईं, आजाद हिन्द फौज में मुसलमान भी तो हैं ! सुना है शाहनवाज उसके सबसे बड़े सिपहसालार हैं। उन्हीं की कमान में सारी फौज है और शाहनवाज मुसलमान हैं। उन्हें और उनके साथियों को अंग्रेजों ने बागी करार दे दिया है।''

बात का जवाब यासीन ने दिया, 'जनाबेआली ! मुसलमान भी तो गलती कर सकता है। कुछ मुसलमान कांग्रेस के साथ भी तो हैं—उनके दिलों में इस्लाम के लिए कोई जगह नहीं है। वे तो काफिरों से भी बदतर हैं। जो हिन्दू हमारी खुलकर मुखालफत करते हैं, हम फिर भी उन्हें अच्छा समझते हैं, पर उन मुसलमानों को क्या कहा जाए जो अपने ही मजहब, दीन-ईमान और भाइयों के साथ गद्दारी कर रहे हैं। हमें उनसे होशियार रहना है और यह मानकर चलना है कि हिन्दू और मुसलमान दो कौमें हैं। हमारे लीडर हैं—कायदे आजम मुहम्मदअली जिन्ना। पूरी मुसलमान कौम उनके साथ है।''

सत्तार भड़क उठा था, ''सुना है जिन्ना साहब मजहब को नहीं मानते—ये वह सब करते हैं जो इस्लामी शरीयत के खिलाफ है। वे न उर्दू जानते हैं, न अरबी। उन्होने पारसी लड़की से शादी की है—वे हमारे लीडर कैसे हो सकते हैं ?''

''जबान बन्द करो सत्तार !'' साईं बिफर उठा था। यासीन की आँखें अंगारे की तरह सुलग उठी थीं और मकसूद एक कदम आगे बढ़कर उस पर वार करने के लिए तैयार था।

''जबान तो बन्द नहीं होगी साईं।''

''यह काफिर है।'' मकसूद चिल्लाया था।

"मारो साले को।" कई आवाज आई थी।

और जब तक सत्तार सँभले-सँभले उस पर ताबड़तोड़ मार पड़ गई थी। वह अपने को सँभाल नहीं पाया था, पर मारपीट की उसी झोंक में उसने मकसूद की नाक तोड़ दी थी।

आखिर साईं ने ही बीच-बचाव किया था। जब उसने सबको हटाया था तो सत्तार गालियाँ देता हुआ अपनी कोठरी की तरफ चला गया था। उसकी आँखों के ऊपर नील पड़ गए थे। ओठ कट गया था और टाँग से खून बह रहा था।

इस झगड़े से बस्ती में सन्नाटा छा गया था। साईं ने उसी रात सत्तार को मस्जिद की कोठरी से निकलवा दिया था।

* * *

मस्जिद के चबूतरे के कोने पर अपना सामान लिए सत्तार बैठा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या करे? शहर में भी कोई ऐसा नहीं था, जिसके पास वह चला जाता—वहाँ एक दूसरी ही नफरत रेंग रही थी। उसे रह-रहकर पछतावा भी हो रहा था कि यह सब उसने क्या कर लिया और क्यों कर लिया?

अपनी नादानी पर उसे गुस्सा भी आ रहा था, पर खुशी इसी बात की थी कि मकसूद की पिटाई उसने कर दी थी। तभी गली के अँधेरे में उसे नसीबन आती दिखाई दी।

"क्यों, क्या बात हो गई थी?" उसने पास आकर कहा।

"खामखाह बात बढ़ गई···लगता है, उस साले मकसूद ने पहले से सब तय कर रखा था।"

"बहुत चोट आई है?"

"हाँ, थोड़ी-सी लगी है। पर मरम्मत मैंने उन सालों की भी कर कर दी।"

"खैर होगा, अब जाओगे कहाँ?"

"यही तो समझ में नहीं आ रहा है।"

"मेरे घर चले चलो। और इन झगड़े-टंटों में पड़ना बन्द करो, समझे। मेरे घर रहो और काम-धाम का कोई सिलसिला ढूंढ़ो।"

"हाँ, अब तो साईं वगैरह मुझे यहाँ काम भी नहीं मिलने देंगे।"

"तेरी किस्मत कोई तुझसे नहीं छीन लेगा...समझा।"

अपना बिस्तर लपेट-लपाटकर और बाकी सामान लेकर वह नसीबन के साथ चल दिया। रास्ते में उसने धीरे से पूछा, "तुम्हें तो ये लोग परेशान नहीं करेंगे ? मेरी वजह से तुमसे भी कहीं दुश्मनी न मानने लगें ?"

"मैं इनसे नहीं डरती..." कहती हुई नसीबन दरवाजे तक पहुँच गई थी। उसने दरवाजा भड़भड़ाया तो रज्जन ने खोला, और खोलते ही दास्तान बयान कर गया, "अम्मी ! बन्ने को बड़ी चोट आयी है। कलुआ ने बहुत मारा आज बन्ने को।"

"कौन कलुआ ?" सत्तार ने पूछा।

"बच्चन का लड़का।" नसीबन ने बताया और आगे पूछने लगी, "पर हुआ क्या था ? क्यों लड़ाई हुई थी ?"

"अम्मी, हम सब कलुआ...रमुआ के साथ खेलने गए थे—वहाँ पजावे वाली पहाड़ी पर खेल रहे थे तो बन्ने के धक्के से रमुआ लुढ़क गया। बस इतनी-सी बात पर कलुआ ने बन्ने को बहुत मारा। फिर हम सबने मिलकर कलुआ को मारा।"

"अरे हरामखोर, लड़ा मत कर।" नसीबन ने रज्जन का कान ऐंठते हुए कहा, "कितनी बार कहा कि लड़ाई हुआ करे, तो मुझसे शिकायत किया कर...अब आया है निपटाकर दास्तान सुनाने।" और इतना कहते-कहते उसने दो चाँटे रसीद कर दिए।

मार खाकर रज्जन बाहर निकल गया। नसीबन सत्तार के साथ भीतर चली गई। बगल वाली कच्ची कोठरी में चटाई बिछाकर सत्तार ने अपना बिस्तर फैला लिया। नसीबन एक ढिबरी जलाकर रख गयी। अँगी जलाकर उसने तेल गरम किया और सत्तार को दे आई। बन्ने तब तक सो गया था, उसने टटोल कर देखा, आँख के पास सूजन थी, उस पर गरम तेल मलकर वह रज्जन का इंतजार करने लगी कि आ

जाये तो दरवाजा बंद करे। पर रज्जन का कहीं पता नहीं था।

बाहर दरवाजे पर आई, इधर-उधर निगाह दौड़ाई, पर वह नजर ही नहीं आ रहा था। तभी बच्चन पहुँच गया। नसीबन को परेशान-सा देखकर वहीं खड़ा हो गया। बच्चन को देखकर नसीबन ने पूछा, "क्या बात है बच्चन ? इस वक्त कैसे ?"

"कुछ नहीं, रमुआ को चैन नहीं पड़ रहा है। लगता है उसके पैर की हड्डी टूट गई है। समझ में नहीं आता क्या करूँ। हल्दी लेने आया था।"

"हड्डी टूट गई ?" नसीबन ने धड़कते हुए दिल से पूछा था।

"लगता तो यही है···जरा-सा पैर हिलता है तो चीखता है।"

"चलो···" कहकर वह बच्चन के साथ चल दी।

रमुआ की टाँग की हड्डी सचमुच टूट गई थी। उसे किसी करवट चैन नहीं पड़ रहा था। मांस एक ओर से फूल आया था। हाथ-पैर ठंडे पड़ रहे थे। एकाएक नसीबन घबरा गई, बोली, "इसे फौरन अस्पताल ले चलो।"

"लेकिन इस वक्त अस्पताल में होगा कौन ?"

"होगा क्यों नहीं···नहीं होगा तो बुलवायेंगे। रात भर में तो बच्चे की जान निकल जायेगी। अच्छा, मैं अभी आई···" इतना कहकर वह सीधी सलमा के घर गई।

और उस वक्त रात में ही नसीबन, बच्चन और सलमा, रमुआ को लेकर अस्पताल पहुँचे थे। सत्तार छुपे-छुपे खामोशी से पहुँच गया था। मर्दाना अस्पताल में सलमा को लोग जानते तो थे, पर बड़ी कोशिश के बावजूद उस वक्त कुछ नहीं हो पाया। रात की ड्यूटी पर जो मेल नर्स थे उन्होंने एक बिस्तर दिलवा दिया था। सुबह डाक्टर के आते ही हड्डी चढ़ जाएगी, इसका दिलासा भी दे दिया था। पर बात थी, बच्चे के पास रुकने की। हारी-बीमारी में आदमी के बस का नहीं होता सँभालना। तभी नसीबन ने बच्चन को शहर से दूध लाने के लिए भेज दिया था और खुद वहीं रुक गयी थी।

रात भर नसीबन वहीं रमुआ के बिस्तर के पास बैठी रही, बच्चन

ने कहा कि वह कुछ देर सो ले, पर वह नहीं हटी, "मरद नहीं समझ सकते बाल-बच्चों का सुख-दुःख।"

* * *

वह रात भी गुजर गई, दो-तीन दिन भी गुजर गए और वहाँ बस्ती में यह खबर जोर पकड़ती जा रही थी कि नसीबन हिन्दू के घर बैठ गई है।

रमुआ अस्पताल में पड़ा था। उसकी टूटी टाँग पर प्लास्टर चढ़ गया था, पर बुखार पीछा नहीं छोड़ रहा था। नसीबन चिंतित-सी दिन-दिन-भर उसके सिरहाने बैठी रही। बस्ती की बातों की भनक उसके कानों में भी पड़ती थी, पर वह जैसे निर्लिप्त थी। वह शाम को चार बजे लौट कर आती थी, अपने बच्चों व कलुआ के लिए खाना पकाकर फिर अस्पताल चली जाती थी तो सुबह छ बजे लौटती थी। यही क्रम हो गया था उसका।

* * *

और उधर शहर में आजाद हिन्द फौज के जवानों की गिरफ्तारी और मुकदमे की खबर गर्म थी। ढिल्लन, सहगल, शाहनवाज का मुकदमा जब लाल किले में शुरू हुआ था, तो शहर जैसे जागृत हो गया था…।

कटरा मुहल्ले में एक कमेटी बन गई थी, जो आजाद हिन्द फौज के जवानों के घर वालों के लिए चन्दा, कपड़े वगैरह इकट्ठा कर रही थी। जोश भरी तकरीरें भी होती थीं।

सर्दियाँ खतम होते-होते लाल किले का वह मुकदमा खतम हो गया और नानबाई ने पूरी खबर दी—"मजाक नहीं था उन लोगों को देश-निकाला देना। वे ढिल्लन, सहगल, शाहनवाज़ को देश से निकालते, वे देश के बाहर फिर आजाद हिन्द फौज बनाते—वहाँ से पकड़े जाते तो

दस दिन बाद गायब—पता लगता अमरीका पहुँच गए, वहाँ फिर वही आजाद हिन्द फौज।"

पर शहर के मुख्तार वकीलों में गम्भीर रूप से यही चर्चा थी कि एक तरह से अंग्रेजी सरकार ने अपनी हार मान ली है। जनता की भावनाओं के उफान को देखकर हुकूमत की यह हिम्मत नहीं पड़ी कि उन्हें जलावतनी देते।

मुख्तार साहब ने धीरे से एक बार फिर कहा था—"भई, भलाई इसी में है कि हिन्दू-मुसलमान मिलकर रहें....।"

मकानों पर लगे साम्प्रदायिक झंडे उतारे तो नहीं गए थे पर उनके रंग जरूर फीके पड़ गये थे। सर्दियों की वजह से वैसे भी शहर देर से जागता था और जल्दी से सो जाता था।

साईं का जमावड़ा भी जल्दी ही टूट जाता था। लेकिन जब मकसूद और यासीन उसके पास आकर बैठ जाते तो बातें चलती रहतीं। और फिर अब तो नसीबन और बच्चन की खबर गर्म थी।

साईं ने धूनी में लोबान डालते हुए कहा था, "पता नहीं, इस नसीबन को क्या हो गया है, जो उसके घर में घुस-घुस के बैठती है।"

मकसूद ने अपना शक जाहिर किया, "मुझे तो पता लगा है कि बच्चन उसे हिन्दुआनी बनाने के चक्कर में है।"

और एक दिन यह खबर भी मिली कि इलाहाबाद में हिन्दू-मुसलमानों का दंगा हो गया है। तीन आदमी मारे गये हैं। शहर के लोगों पर कोई खास असर तो नहीं दिखाई दिया पर शहर की दीवारों पर एक पर्चा जरूर चिपका हुआ दिखाई दिया—

"लेके रहेंगे पाकिस्तान।"

"पाकिस्तान जिन्दाबाद।"

कोई भी इस पर्चे को रुककर नहीं पढ़ता था पर सबने उसे देखा था और भीतर ही भीतर बातें चालू हो गयी थीं। तरह-तरह की बातों के मतलब लगाए जाने लगे थे। तहसील के स्टाम्प फरोश सिबते ने हाफिज की दूकान पर जब धीरे से यह बताया कि तहसीलदार साहब गजाधर सिंह ने अपने पुराने मुसलमान चपरासी को जवाब दे दिया है तो लोगों

को एक धक्का-सा लगा था।

"अरे तो उसने कोई चोरी-चमारी की थी?" हाफिज जी ने पूछा।

"कुछ भी नहीं, उनके बच्चों को स्कूल छोड़ने जाता था, साग-सब्जी ला देता था—और वह इतना पुराना चपरासी था, उससे किसी नुकसान की उम्मीद ही नहीं की जा सकती। अब बताइए, पाँच-पाँच बच्चे हैं गरीब के। कहाँ से उनका पेट भरेगा!" सिबते ने कहा।

हाफिज जी कुछ देर तक सोचते रहे थे, फिर बोले थे, "सिबते, तुम उसे यहाँ बुला लाना। किसी वक्त शायद मेरे पास कुछ काम निकल आए।"

और तहसील का चपरासी बरकत दूसरे ही दिन से हाफिज जी के यहाँ काम पर लग गया था।

लोगों ने अपनी तरह से बातों को तोड़ा-मरोड़ा था। तहसीलदार साहब के नये चपरासी हरनाम ने अपनी मूँछ पर ताव देते हुए कहा था, "अब यहाँ मुसलमानों की नहीं चलेगी। इनका कोई इतमीनान नहीं। तहसीलदार साहब अपने बच्चों को कैसे सौंप देते एक मुसलमान के हाथ में।"

और मंजूर अली की जो इमारत बीच बाजार में बन रही थी उसमें सात दूकानें भी निकली थीं। हिन्दू व्यापारियों ने अच्छे किराये पर उन्हें लेना चाहा था, पर मंजूर अली ने कम किराया लेना मंजूर किया था, पर दूकानें मुसलमानों को ही दी थीं।

इस बात पर खादी भंडार के आचार्य जी तक बिफर उठे थे, "इन मुसलमानों का कोई भरोसा नहीं। भीतर ही भीतर इनके दिलों में हिन्दुओं के लिए छुरियाँ चल रही हैं।"

"ये सब अपने को मजबूत बनाने में लगे हुए हैं...आप देखिएगा कि दंगे होंगे और हिन्दू मार खाएँगे।" गुप्ता ने राय दी थी।

"अरे ठाकुरों की गद्दी रही है यह..." ठाकुर जसपाल सिंह ने शहद की शीशी खरीदते हुए कहा, "इतनी मजाल नहीं है मुसल्लटों की कि यहाँ इस जिले में सिर उठा जाएँ...।"

"संघ वालों ने बड़ी समझदारी का कदम उठाया है। मंडल कांग्रेस कमेटी के मन्त्री जी भी अपने लड़कों को संघ की शाखा में भेजते हैं। संघवालों का वे खुद बहुत साथ देते हैं।" गुप्ता कहने लगा।

"अब संघ ही रक्षा करेगा इन यवनों से।" ठाकुर साहब संघी भाषा में ही बोल रहे थे, "हिन्दू जाति को कोई परास्त नहीं कर सकता··· कलियुग में संघ ही शक्ति है।" ठाकुर साहब ने संघ शब्द का अर्थ ही बदल लिया था।

* * *

पूरी बस्ती में संघ वालों का दौर-दौरा बढ़ता जा रहा था।

तीन-चार दिन से बड़ी दौड़-धूप हो रही थी। स्वयंसेवक साइकिलों पर घूम-घूमकर इधर-उधर सूचनाएँ पहुँचा रहे थे। उनका कोई पर्व था और एक बड़े अधिकारी नगर में पधार रहे थे।

अधिकारी जी का स्टेशन पर ही भव्य स्वागत हुआ और हाथी पर बैठाकर उन्हें नगर में लाया गया।

समय होते ही सीटियाँ बजने लगीं और स्वयंसेवक कतारों में खड़े हो गए। उनकी कवायद देख-देख कर लोगों को अनोखा अनुभव हो रहा था···।

···हिन्दुत्व की गरिमा और महिमा का सोया हुआ इतिहास जैसे फिर जाग रहा था।

और संघ के अधिकारी ने स्वयंसेवकों को सम्बोधित करते हुए कहा था—"आज मातृभूमि फिर वही बलिदान माँग रही है। भारतीय राष्ट्र आज युगों की निद्रा के बाद जाग रहा है। हम अपनी संस्कृति, अपने गौरव तथा अतीत की गरिमा की रक्षा के लिए कटिबद्ध हैं। निर्बल राष्ट्र की कोई स्थिति नहीं होती···हिन्दू राष्ट्र ने आज अपना तीसरा नेत्र खोला है···वह सब इसमें भस्म होगा जो विदेशी है; संसार की कोई सत्ता हमें अब पददलित नहीं कर सकती। हम वीरों की संतान हैं···हम शिवाजी, महाराणा प्रताप और लक्ष्मीबाई की संतान हैं···वीरता में

शक्ति है तथा शक्ति में है प्रभुता का स्रोत । वीरभोग्या वसुन्धरा···और वीर वही है जो हिन्दू है ।"

चारों तरफ उत्तेजना व्याप गयी थी । खून में गर्मी आ गयी थी । बच्चों के लिए तो यह सब एक अच्छा खेल था । विद्यार्थियों की अंधी शक्ति के लिए इसमें एक राह थी और व्यापारी-वर्ग के लिए सुरक्षा की भावना थी ।

* * *

उस दिन मुसलमानों में मुर्दनी छाई हुई थी । मुसलमानों की दूकानें जल्दी बन्द हो गई थीं, मस्जिदों में ज्यादा भीड़ थी । एक अजीब-सा सकता था ।

हाफिज जी उस दिन अपनी दूकान से उतरे थे और बगल की दूकान वाले संतलाल से दुआ-बंदगी किए बगैर ही चले गए थे । मस्जिद के नीचे बैठकर कबाब और पराठा बेचने वालों ने जल्दी ही खोंचे उठा लिए थे ।

सुबह शहर जागा तो रात की आशंकाएँ मिट चुकी थीं पर कुछ और बदल चुका था । नजरें मिलने से कतराती थीं । रात को डाकखाने वाले अड्डे पर खड़े इफ्तिकार के इक्के को स्टेशन के लिए तीन सवारियाँ मुश्किल के मिलीं थीं···।

उसके सामने ही बदरी और जमुना के इक्के लद-फँदकर चले गए थे । वे इक्के जिन पर लोग बैठते कतराते थे, मरियल घोड़ों पर रहम करते हुए वे सवारियाँ कूदकर इफ्तिकार के सजे-बजे इक्के पर बैठ जाती थीं ।

इफ्तिकार देखता रहा—बड़ी उलझन हो रही थी उसे । शहर में उसका इक्का मशहूर था । उसके घोड़े का सानी नहीं था । ··अपने इक्के को वह सजा-सँवार कर रखता था और कंकड़ की सड़क से जब उसका इक्का गुजरता था तो घोड़े के पैरों में बँधे हुए घुँघरू खनकते जाते थे ।··· इफ्तिकार का इक्का जा रहा है, लोग घरों में बैठे-बैठे ही जान जाते थे ।

चौथी सवारी के लिए वह तरसता ही रह गया पर नहीं मिली। उसके दिल पर जैसे किसी ने पहली बार घूंसा मारा था।

बड़े भारी दिल से इफ्तिकार उन तीनों सवारियों को स्टेशन ले गया था; और गाड़ी छूटने का इंतजार किए बगैर ही वह इक्का हाँक लाया था। घर आकर लस्त हाथों से उसने इक्का खोला था। और घोड़े के घुंघरू खोलकर उसने कोठरी के एक कोने में फेंक दिए थे। तभी सत्तार आ गया था।

"बड़ी जल्दी लौट आए, इफ्तिकार भाई! सवारियाँ नहीं थीं?"

"थीं तो, पर कुछ समझ में नहीं आता सत्तार! मैं मुसलमान हूँ, शायद इसलिये लोग मेरे इक्के पर बैठते कतराते हैं...।"

"ऐसी क्या बात है?"

"स्टेशन का रास्ता सुनसान है न। इसीलिए उन्हें डर लगता है। अरे पूछो, यहीं पैदा हुआ...यहीं रहा-बसा, अब लोग मन ही मन मुझ पर शक करते हैं। समझ में नहीं आता, यह हो क्या रहा है?" बड़े बुझे मन से इफ्तिकार ने कहा था।

"हाँ, रंग-ढंग कुछ मेरी भी समझ में नहीं आते।"

"कुछ नहीं सत्तार, हम गरीब मारे जाएँगे...अपना वतन छोड़कर हम कहाँ जाएँगे? यहाँ पेट नहीं भरेगा तो क्या करेंगे?"

तभी दूर पर डाकबंगले में एकाएक गैस की रोशनी दिखाई दी। पेड़ों की काली कतारों के पार से वह रोशनी छन-छनकर आ रही थी। एक ओर हटकर सत्तार ने देखा और बोला, "लगता है, कोई आया है डाकबंगले में।"

"होगा कोई अफसर।" इफ्तिकार ने कहा।

"बड़ी तैयारी-सी लग रही है।"

"तो कोई अंग्रेज अफसर आया होगा।" कहकर इफ्तिकार उदासीन हो गया। यूं ही जब कोई और बात करने को नहीं रह गयी तो सत्तार बोला, "साईं बड़ा बवाल खड़ा कर रहा है। कुछ सुना तुमने?"

"नसीबन और बच्चन को लेकर। वही न...अरे, साईं की माया

साईं जाने । वह तो ऊँट की जात है, जिसका पता नहीं चलता कि कब किस करवट बैठेगा ।''

''साईं पीछे पड़ गया है नसीबन के ।'' सत्तार ने कहा ।

''यह साईं बड़ा घुटा हुआ आदमी है, सत्तार। शहर भर में घूम-घूमकर यह करता क्या है ? जितने बुरे फेर वाले लोग हैं, सबसे दोस्ती है इसकी । इसे अल्लाह से क्या वास्ता ?...'' इफ्तिकार बताता जा रहा था, सत्तार कान खड़े करके सुन रहा था । एक पल रुककर उसने पूछा, ''यह साईं कोकीन-वोकीन तो नहीं बेचता । अगर ऐसा हो तो साले को फँसवा दिया जाए...।''

''साईं को ? उसे फँसवाना टेढ़ी खीर है...पुलिस वालों से बड़ी घुटती है उसकी । वह उन्हें खबरें भी पहुँचाता है...'' इफ्तिकार ने भेद-भरे ढंग से कहा ।

दोनों कुछ देर के लिए खामोश हो गये थे । उनकी आँखें उधर डाक-बँगले पर लगी थीं, जहाँ रौनक बढ़ती जा रही थी । एक गैस लैम्प और आ गया था, कुछ चपरासी वगैरह भी बुतों की तरह भाग-दौड़ रहे थे और एक कार से मेम भी उतरी थी ।

तभी सलमा की गली से कुछ अजीब-सी आवाजें आने लगीं, दबी-दबी पर दर्द से भरी हुई । सत्तार के कान खड़े हुए, बोला, ''लगता है, मकसूद सलमा को मार रहा है ।''

''अरे उस जनखे में इतनी हिम्मत कहाँ ?''

''तो औरत पर हाथ क्या कोई मरद उठाएगा...'', कहता हुआ सत्तार गली की तरफ चल दिया । कुछ दूर पर वह ठिठककर खड़ा हो गया । सलमा के घर के बाहर कुछेक लोगों का मजमा था और मकसूद चीख रहा था, ''अब देखें; कहाँ जाती है सुअर की बच्ची । नौकरी का रोब डालती है । अब बाहर निकले हरामजादी, तो पैर कलम कर दूँ...।''

सत्तार कुछ और पास पहुँचा...देखा, मकसूद सुरमा लगाए और पत्तीदार बाल काढ़े हुए था, माँग बीच से निकली हुई थी ।

सत्तार की आँखों में खून उतर आया । सलमा के कराहने और रह-

रहकर चीखने की आवाज अब भी आ रही थी। सत्तार तय नहीं कर पा रहा था कि क्या करे ?

उसी असमंजस और आक्रोश में पैर पटकता हुआ वह सलमा के घर के पिछवाड़े चला गया···कच्ची दीवार पर नजर पड़ी तो मन में आया, भीतर कूद जाए और सलमा को इस नरक से बाहर ले आए, फिर जो होगा वह देखा जाएगा। वह इरादा कर ही रहा था कि पीछे से आवाज आई, "सत्तार !"

सत्तार चौकन्ना हो गया। ठिठक कर उसने देखा—कुछ दूर पर बच्चन खड़ा था।

"क्या है बच्चन भाई।"

"इस वक्त यहाँ क्या कर रहे हो ?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही···" उससे कोई जवाब नहीं बन रहा था। बच्चन और पास आ गया, उसके चेहरे पर भेद-भरी मुस्कान खेल रही थी। अँधेरे में दोनों की पुतलियाँ चमक रहीं थीं, पर बच्चन की आँखों में लाली तैर रही थी···एक खौफनाक लाली। एक क्षण के लिए सत्तार को कुछ घबराहट हुई, फिर वह अपने-आप ही सब कुछ बता गया। सुनकर बच्चन बोला—

"तो घर में कूदकर उसे निकाल लाने की गलती क्यों कर रहे हो ? इस तरह तो कानूनन फँस जाओगे···पहले सलमा की मंशा जान लो। अगर वह तैयार हो तो चुपचाप किसी वक्त लेकर निकल जाओ। मेरी जरूरत पड़े तो बताना, समझे। आओ चलो मेरे साथ।" कहते हुए बच्चन उसे ले आया। मस्जिद के चबूतरे के पास जाकर वह रुक गया। बच्चन लड़खड़ाता हुआ नसीबन के घर की ओर चला गया।

कुछ देर बाद बच्चन को लौटते देखकर वह खड़ा हो गया; लेकिन बच्चन उसे बिना देखे उधर बम्बे वाली पगडंडी पर चला गया।

आखिर वह घर पहुँचा तो देखा नसीबन बाहर आ रही है। न चाहते हुए भी वह पूछ बैठा, "इतनी रात में कहाँ जा रही हो ?"

"बच्चन के घर तक।"

"लेकिन बच्चन तो उधर बम्बे की तरफ गया है, घर गया ही नहीं

है…मैंने खुद देखा है ?"

"पता नहीं कैसा बाप है, जो अपने बच्चों तक का ख्याल नहीं रखता। इतनी रात उतर आई, बच्चे घर में अकेले पड़े होंगे—भूखे-प्यासे और यह पट्ठा घूम रहा है। अजीब आदमी है…" बड़बड़ाती हुई नसीबन बाहर निकल गई। सत्तार ने देखा, उसकी बगल में रोटियों की पोटली थी और गिलास में सालन। उसे यह सब अच्छा-सा लगा…वह तब तक नसीबन को जाते हुए देखता रहा, जब तक वह मोड़ पर ओझल नहीं हो गई।

बकरी के बच्चे टट्टर से बाहर निकलकर कुलाँचे भर रहे थे। उन्हें टट्टर के भीतर करके सत्तार चुपचाप भीतर पहुँचकर लेट गया।

सुबह उसकी आँख खुली तो शोर-सा सुनाई पड़ा…जैसे घर के पिछवाड़े ही कुछ लोग खड़े होकर बातें कर रहे हों। तहमद कसकर वह बाहर निकल आया तो देखा—डाकबँगला लाल पगड़ी वालों से भरा हुआ था और बस्ती में पुलिस के आदमी मँडरा रहे थे। माजरा उसकी समझ में नहीं आ रहा था। पता नहीं क्या वारदात हुई थी। बच्चे अपने कच्चे घरों के सामने सहमे से खड़े थे। मकतब के मौलवी साहब शायद दरोगा से ही कुछ खुसपुस कर रहे थे और साईं एक ओर खड़ा पुलिस के कान्स्टेबुलों से आँखें फाड़-फाड़कर बतिया रहा था। सत्तार को देखते ही मौलवी ने दरोगा को इशारा किया था और उसकी कड़कती हुई आवाज सुनाई दी थी "पकड़ लो बदमाश को।"

दो पुलिस वालों ने सत्तार के दोनों हाथ पकड़े और लाकर दरोगा के सामने हाजिर कर दिया। सत्तार, अचकचाकर अभी कुछ समझने की कोशिश ही कर रहा था कि दरोगा का दस्ती डंडा उसकी पीठ पर पड़ा, "क्यों बे हरामी के बच्चे। कितने दिनों से इधर है ?"

"पर हुजूर, मेरा कसूर…"सत्तार ने एक और वार झेलने के लिए पीठ को सिकोड़ते हुए कहा।

तभी मौलवी ने दरोगा से क ा, "हुजूर, यह वैसे तो मुसलमान है।"

"लेकिन है गद्दार।" पता नहीं कहाँ से निकल कर मकसूद बोला,

था। सत्तार कुछ समझ नहीं पा रहा था। तभी मकसूद ने बताना शुरू किया, "हुजूर। मैंने इसे अपनी आँखों से कल रात बच्चन के साथ पिछवाड़े जाते देखा था। फिर मैंने इन दोनों को सूखा नाला पार कर उधर डाकबँगले की तरफ जाते हुए देखा था, यही कोई साढ़े ग्यारह-बारह का वक्त रहा होगा। दोनों डाकबँगले का चक्कर लगाकर लौटे थे तो कुछ देर मस्जिद के चबूतरे पर बैठे रहे थे।"

"...रे, तो मुझे भी कुछ बताइए...आखिर यह सब क्या है ? क्या किया है, मैंने ?" सत्तार ने परेशानी से कहा था।

"चुप बे हरामी के पिल्ले..." दरोगा ने डाँट दिया और उसे घूरते हुए बोला था, "वहाँ पाँच हजार की हवेली में जब चूतड़ पर डंडे बरसेंगे तो सब बकेगा, अभी कितना भोला बन रहा है साला।"...बच्चन कहाँ है ?" डाँटते हुए दरोगा ने पूछा था।

"बच्चन ? मुझे कतई पता नहीं हुजूर !" सत्तार कुछ घिघियाकर आजिजी के बोला था, पर एक दस्ती डंडा और पीठ पर पड़ गया था।

"यहाँ नहीं कबूलेगा दरोगा साहब।" मकसूद बीच में बोला था, "वहीं ले जाइए...बड़ा साला हिन्दुओं का हिमायती बनता है।"

"पर हुजूर...माई-बाप, मुझे सचमुच नहीं मालूम कि वह कहाँ है। उधर मकान के पिछवाड़े वह मुझे मिला जरूर था, और मस्जिद तक साथ भी आया था, पर फिर पता नहीं कहाँ चला गया। सच कह रहा हूँ सरकार।"

"सरकार का बच्चा।" दरोगा ने एक झन्नाटे का थप्पड़ जड़ दिया था—"अबे हमी से हरामजदगी। बोटी-बोटी उड़ा दूँगा। बता कहाँ है बच्चन और कितने आदमी थे चोरी में ?"

"कहाँ की चोरी...कैसी चोरी ?"

"अबे वहीं की, जहाँ की थी...डाकबँगले की, और कहाँ की ?" कमर पर डंडा ठोंकते हुए दरोगा ने बेरहमी से कहा था।

"मुझे कुछ पता नहीं।" सत्तार घबरा गया था।

"तुम बस बच्चन का पता बता दो, बाकी सब ठीक हो जाएगा।

तुम्हारे ऊपर हर्फ नहीं आएगा, समझे सत्तार।'' मौलवी और साईं समझाने लगे थे।

मकसूद ने इस बीच घर से पान के बीड़े मँगवा लिये थे। उन्हें पेश करते हुए उसने एक तह जमाई—''दरोगा साहब, बच्चन का पता लग जाएगा और साहब का सारा सामान भी मिल जाएगा···आखिर सत्तार अपना भाई-बिरादरी है।'' कहते हुए उसने मुस्कराकर साईं की ओर देखा था। साईं की सुरमा लगी आँखों में शैतानी थी।

''दरोगा साहब, खुदा कसम, मुझे बच्चन के बारे में रत्ती भर भी पता नहीं····आप इतमीनान तो कीजिए।'' सत्तार ने फिर कहा।

''तो नसीबन से पूछ कर आ, उसे मालूम होगा।'' साईं ने कहा था।

''पता उसे भी नहीं है, पर आप कहते हैं तो पूछ आता हूँ।'' कहते हुए सत्तार उठा तो दरोगा ने रोक लिया—''तू रहने दे।····उसे यहीं बुलवाते हैं?''

* * *

और उसके बाद दोपहर तक खोज-बीन होती रही। दरोगा की खाट उठकर मकसूद के छप्पर में चली गई। पान और शर्बत आता रहा।

बच्चन का पता लगाने के लिये सत्तार को फिलहाल गिरफ्तार करके थाने में बंद नहीं किया गया था। उसे खुला छोड़ दिया गया था····ताकि पुलिस उसके इधर-उधर आने-जाने से कुछ सुराग जान सके। अब पुलिस नशीबन को परेशान कर रही थी पर बच्चन का कोई पता नहीं था। रात का गया वह लौटा ही नहीं था। नसीबन दरोगा के सवालों से परेशान आ गयी थी और यह कहकर उठ आई थी—''मुझे जब पता ही नहीं है तो क्या बताऊँ····मर्जी मुझे गिरफ्तार करने की हो तो कर लीजिए। और मैं क्या कहूँ।''

बस्ती में दिन भर सियापा छाया रहा। लड़के-बच्चे कुछ देर तक

तो पुलिस वालों को हैरत-भरी निगाहों से ताकते रहे, फिर इधर-उधर बिखर गए।

लेकिन बच्चन के बच्चे अकेले घर में खामोश बैठे थे। लकड़ी की खिड़की की छड़ें पकड़े दोनों बहुत देर तक कच्ची सड़क की ओर निहारते रहे थे—शायद बापू आ जाए। ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि बापू लौटकर न आए? भूख के मारे छोटे लड़के का बुरा हाल हो रहा था, पर बस्ती में छाये सन्नाटे के कारण दोनों सहमे हुए थे। दोपहर ढले जब नसीबन उनके लिए खाना बनाकर पहुँची तो दोनों रो पड़े थे। जैसे-तैसे उन्हें खाना खिलाया था और वहीं रुक गई थी।

शाम होते ही सत्तार आया था—"घर नहीं चलोगी?"

"इन बच्चों का क्या करूँ? कुछ समझ में नहीं आता। बच्चन तो आता दिखाई नहीं देता, पता नहीं क्या हुआ है···वैसे अब उसका आना ठीक भी नहीं है! अगर आया तो पुलिस के चंगुल में फँस जाएगा।"

"अगर उसने कुछ किया नहीं है तो डर किस बात का?" सत्तार ने नासमझी से कहा था।

"तू तो एकदम नासमझ है···लोग दुश्मनी निभा रहे हैं। अच्छा देख, एक काम कर सत्तार।" नसीबन की चिंता उभर आयी थी, "उधर बम्बे पर जाकर तू जरा नजर रख, शायद बच्चन लौटता हो। आएगा तो उसी पगडंडी से। अगर दिखाई पड़े तो वहीं से लौटा देना। कहना, यहाँ उसके लिए खतरा है····पर तुम भी जरा सँभलकर जाना, कहीं किसी जासूस ने देख लिया और शक पड़ गया तो तुम उल्टे फँस जाओगे, समझे।"

"और ये बच्चे?"

"इन्हें मैं साथ घर ले जाती हूँ; वहीं रखूंगी। जो होगा सो देखा जाएगा।···" नसीबन ने कहा था।

सत्तार कुछ भी समझ नहीं पा रहा था। लम्बे रास्ते से बम्बे की ओर जाते हुए उसके दिमाग में तरह-तरह की बातें आ रही थीं। आखिर यह सब माजरा क्या है? शायद नसीबन को बच्चन का पता

है, शायद यह भी बच्चन के साथ मिली हुई है····यह चोरी बच्चन ने ही की है···और इन दोनों के रिश्ते भी कुछ···पर तभी नसीबन का मुर्झाया हुआ ढलता चेहरा सामने आ गया था। इतनी उम्र में अब भला इस तरह की बातें···रह-रहकर उसका मन उचाट हो जाता था।

चारों तरफ घुप्प अँधेरा था। कुछ देर बाद बम्बे के उस पार अँधियारे में उसे एक काला धब्बा नजर आया था। वह चौकन्ना हुआ पर वह धब्बा बहुत आहिस्ता-आहिस्ता सरक रहा था।

वह टीले से नीचे उतर आया। मुँह पर बम्बे के पानी के छींटे मारे और आँखें धोकर वह गौर से ताकने लगा। धब्बे की दूरी घटती जा रही थी और वह अब ज्यादा तेजी से नजदीक आ रहा था। यह बच्चन ही होगा। पर बच्चन तो पैदल गया था, यह धब्बा तो साइकिल पर लग रहा है।

कुछ आगे बढ़कर उसने पहचाना—वह बच्चन ही था। वह और लपका तो दूर पर ही बच्चन साइकिल से उतरकर ठिठक गया।

"कौन बच्चन ?" सत्तार ने आवाज दी।

बच्चन चुप रहा।

"बच्चन भाई, मैं हूँ सत्तार।" कहकर वह आगे बढ़ा तो बच्चन की जान में जान आई। माथे का पसीना कन्धे से रगड़ कर पोंछते हुए बच्चन बोला, "इस वक्त इधर कैसे ?"

"तुम्हारे इंतजार में था।"

"क्यों, कोई खास बात ? अच्छा जरा साइकिल सँभालना।" बच्चन ने उसे साइकिल थमाकर कैरियर पर बँधी चमड़े की छोटी-छोटी मशकों को जरा ऊपर सरकाया, जो ऊबड़-खाबड़ रास्ते के कारण ढीली होकर एक तरफ लटक आयी थीं।

मशकों से कच्ची शराब की गंध फूट रही थी। सत्तार का सिर एकबारगी उस तेज महक से गनगना उठा। बोला, "ये मशकें तो यहीं बम्बे में बहा दो और तुम अभी नौ-दो ग्यारह हो जाओ, समझे।"

"क्यों ? पुलिस ने छापा मारा है क्या ?" बच्चन की आवाज में बेहद परेशानी थी।

"...हाँ, सुबह से पुलिस तुम्हें तलाश रही है। डाकबँगले में कल रात चोरी हुई है, शक तुम्हारे ऊपर है, तुम भाग जाओ।" सत्तार ने कहा तो बच्चन सोच में पड़ गया और अपने आप ही बड़बड़ाने लगा, "सालों का पेट नहीं भरता...चाहे जितना रुपया पिलाओ, ये गर्दन पर चढ़ते आएँगे।" फिर सत्तार से उसने पूछा था, "कौन दरोगा आया था ? कुछ नाम-वाम पता है ?"

"जाफर अली बताता था अपने को।" सत्तार ने बताया।

एक पल चुप रहकर बच्चन बोला, "समझ गया ये अब पीछा नहीं छोड़ेंगे। गनीमत है कि डाकबँगले में चोरी ही हुई है, कहीं कतल हुआ होगा तो उसमें भी नाम धर देते।"

"तुम यहाँ से भाग जाओ, बस यही ठीक है। नसीबन बुआ भी यही कह रही थीं कि अगर दिखाई पड़ जाए तो भगा देना। बच्चों की फिक्र मत करो, वे बुआ के घर पर हिफाजत से हैं। इधर जब धूल बैठ जाय तो लौट आना। अब देर मत करो...", सत्तार ने साइकिल का रुख जैसे-तैसे पलटते हुए हैंडिल उसे थमाया, "और सुनो, ये मशकें यहीं बम्बे में खोल दो...।"

"इन्हें लेता जाऊँगा वापस। बहुत पैसे का नुकसान हो जाएगा।" कहते हुए उसने साइकिल को पगडंडी की लीक में डाल दिया।

"अच्छा सत्तार भाई ! दो-चार दिन बाद चक्कर लगाऊँगा, तब तक जरा बच्चों का ख्याल रखना...।"

"खुदा हाफिज।" सत्तार ने कहा और ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर उसे डगमगाते जाते हुए देखता रहा।

घर की तरफ लौटते हुए उसे खुशी हो रही थी, जैसे वह कोई बहुत बड़ा काम करके लौट रहा हो, पर वह खुशी धीरे-धीरे गायब हो गई—अपनी परेशानियों में वह उलझ गया—आखिर इस तरह कैसे चलेगा ? बिना काम-धाम के कैसे दिन कटेंगे ?...

न चाहते हुए भी इफ्तिकार की कोठरी के पास उसके कदम ठिठक गए। इफ्तिकार की कोठरी से मोमबत्ती की रोशनी आ रही थी। इक्का तोप की तरह टिका हुआ था और घोड़ा गर्दन में लटकी बाल्टी से रातब

की जुगाली कर रहा था। भिड़े हुए दरवाजे से उसने झाँका—इफ्तिकार काँच के चटके हुए गिलास से गटगट पानी पी रहा था। उसके सामने वह तामचीनी की प्लेट भी नहीं थी, जिसमें रोटी रखकर वह कच्चे प्याज और नमक से खाया करता था।

आज इफ्तिकार का फाका हुआ है।

पानी पीकर तहमद से मुँह पोंछते हुए वह बाहर निकलने वाला था कि सत्तार लौट पड़ा। रुकने और बात करने की हिम्मत ही उसमें नहीं रह गई थी।

थके मन और तन से वह घर लौट आया। नसीबन को सब कुछ बताकर वह अपनी दरी पर लेट रहा। कुछ देर बाद नसीबन तो सो गई पर सत्तार की आँखों में नींद नहीं थी।

कोहनी के बल बैठकर वह कुछ पल नसीबन को ताकता रहा—जैसे आज पहली बार अच्छी तरह पहचानने की कोशिश कर रहा हो।

आज पहचानते-पहचानते उसे एकाएक ऐसा लगा था जैसे वह नसीबन को सचमुच पहली बार देख रहा हो। उसके सब नक्श, कानों में पड़ी चाँदी की बालियाँ उलझे हुए बाल और चेहरे की झुर्रियाँ, गर्दन के पास उभरी हुई नसें और सूखी छातियाँ···हाथों की अँगुलियों के काले और टूटे हुए नाखून, सूखी बाँहों में तार की तरह उभरी हुई नसें और साँस से जीवित होने का भ्रम पैदा करता हुआ पूरा शरीर—जैसे सब कुछ उसके लिए एकदम नया था। उस काया से वह नसीबन का नाम जोड़ ही नहीं पा रहा था।

कोहनी दर्द करने लगी तो वह सीधा लेट गया।···

* * *

और उधर शहर में अजीब-सा सन्नाटा छाने लगा था। कभी-कभी कुछ सनसनाहट भी होती तो सन्नाटा टूटता-सा लगता। शहर की धड़कनें कभी तेज होतीं, कभी धीमी पड़ जातीं···कभी बहुत लोग शंकित और

त्रस्त-से नजर आते और कभी उनमें उद्दाम उत्साह-सा लहर मारता दिखाई देता।

जब से आजाद हिंद फौज का मुकदमा निपटा था, तब से एक और तरह का अलगाव नजर आने लगा था। आपसी भाई-चारे की भावना भीतर ही भीतर सिमटकर समाप्त-सी हो गई थी। दोनों जातियों में अपने हिन्दू और मुसलमान होने का अहसास बढ़ता जा रहा था। हिन्दू शायद अपने को एकाएक ज्यादा हिन्दू समझने लगे थे और मुसलमान अपने को ज्यादा मुसलमान।

पुलिस पर से भी लोगों का विश्वास उठता जा रहा था—खासकर हिन्दुओं का—अगर शहर कोतवाल का तबादला हुआ और मुसलमान कोतवाल के आने की खबर मिलती तो हिन्दुओं को भीतर ही भीतर परेशानी-सी होती, और मुसलमानों को कुछ राहत मिलती। पुलिस में ज्यादातर मुसलमान कांसटेबल ही थे, इसलिए हिन्दुओं को बराबर यही लगता कि आफत मुसीबत के वक्त उनका साथ पुलिस नहीं देगी··· और मुसलमानों को कुछ-कुछ यही भरोसा था, कि अगर कहर टूटा ही तो कम से कम पुलिस तो साथ होगी, दस-बीस हिन्दू हवलदार क्या कर लेंगे ?'

शहर के अंग्रेज अफसरों से मुसलमानों को बहुत मदद की उम्मीद थी, क्योंकि कहीं भीतर ही भीतर उन्हें यह विश्वास था कि जिन्ना साहब की पीठ पर अंग्रेजी सरकार का हाथ है और वक्त आने पर अंग्रेज अफसर मुसलमानों का साथ देंगे।

और हिन्दुओं को आसरा था कि शहर के धनी-मानी घरानों और आसपास के गाँवों के ठाकुरों-अहीरों का। अगर मारकाट हुई तो गाँवों से लड़ाके ठाकुरों और अहीरों के जत्थे के जत्थे आएँगे और मिनट-भर में सब सफाया कर देंगे···पुलिस क्या करेगी तब ?

सभी मजलिसों में भीतर ही भीतर इन्हीं बातों की अनुगूंज थी और अलग-अलग जातियों के मुहल्लों में एक-दूसरे की ज्यादतियों और बद-माशियों, चालों और फरेबों की दिमागी लिस्टें बन रही थीं···एक-एक

घटना के मतलब निकाले जा रहे थे और उन्हें पुरानी बातों के सन्दर्भ में तौला जा रहा था।

बहुत सूक्ष्म अंतर जगह-जगह उभरा था। अभी तक बाजार में हिन्दू और मुसलमान को पहचानने के लिए आँखों पर कुछ जोर डालना पड़ता था, पर अब उसकी जरूरत नहीं रह गई थी। चौक बाजार में दरी और चादरों के मुसलमान व्यापारी सफेद लुंगी के बजाय चारखाने की लुंगी पहनने लगे थे और ऊपर तंजेब के कुरते की जगह वाइल की रँगी हुई हरी कमीजें। बिसातखाने के बिसाती रोजमर्रा का सामान रखने के साथ-साथ अलीगढ़ की छपी हुई कुछ उर्दू किताबें और पर्चे भी रखने लगे थे।

अब मंदिरों में बिला नागा शाम को आरती होती थी और घंटे-घड़ियालों का शोर देर-देर तक शाम के धुंधलके में ठहरा रहता था··· उनकी गूंज दूर-दूर तक सुनाई पड़ती थी। गलियों में पुजारियों के खड़ाउँओं की आवाज अब बहुत साफ-साफ सुनाई पड़ती थी।

मस्जिदों के मोअज्जन भी अब गला खोलकर अजान देते थे और मस्जिदों की नमाज में शामिल होने वालों की तादाद बढ़ गई थी।

इसी समय शहर में मुसलमान फकीरों और हिन्दू साधुओं की बाढ़ भी आई थी। कटरा के लाला सीताराम, छपट्टी के मुख्तार साहब, चौबियाने के चौबे जी और बजरिया के पुन्नू लाल के यहाँ एक-एक स्वामी जी निवास कर रहे थे और सभी जगहों पर हर शाम रामायण, भागवत आदि पर प्रवचन हो रहे थे।

गुलाब बाग, दरीबाँ और खानकाह के पीछे वाले मुहल्ले में पहुँचे हुए फकीर शरीयत समझा रहे थे···और धूनी रमा कर डटे हुए थे।

* * *

उधर चिकवों की बस्ती में साईं का दबदबा और बढ़ गया था। मकसूद और यासीन बहुत व्यस्त और परेशान नजर आते थे।

बरसात के दिन थे। आसमान रह-रहकर काला पड़ जाता था

और बादल टूटकर बरस पड़ते थे। पूरी बस्ती में सोंधी मिट्टी की महक भरी हुई थी, पतली गलियों में पानी जमा हुआ था। घरों के दरवाजों पर पड़े टाट के परदे जराबख्तर की तरह भारी होकर झूल आये थे। बेहद उमस और सीलन थी।

इफ्तिकार का घोड़ा पूँछ से मक्खियाँ उड़ाते-उड़ाते परेशान था और झुँझलाकर हिनहिना उठता था।

मस्जिद और मंदिर की दीवारें कोपलें फोड़ती घास और काई से भरी हुई थीं। चबूतरों की ईंटों और दरारों में गिजाइयाँ रेंग रही थीं। और लड़कों के गोल गीली और फुसफुसी मिट्टी में से गेंसे पकड़-पकड़ कर जमा कर रहे थे।

अभी पानी थमा ही था कि अपने तहमद से पसीना पोंछते हुए मकसूद ने मस्जिद की दहलीज में जमा कुछ आदमियों की भीड़ में आकर दरयाफ्त किया—"मौलाना साहब को लाया जाए?"

"जरूर लाओ भई, देर हो रही है।"

"बस, जरा चाय पी लें, मैं साथ लेकर आता हूँ•••।"

और मौलाना के आने तक उस पचीस-तीस आदमियों की भीड़ में यही चर्चा होती रही कि मौलाना साहब जनाब लियाकत अली साहब के घराने के हैं, इधर से जौनपुर जा रहे थे कि यासीन भाई ने एक शाम के लिये इसरार करके रोक लिया। मौलाना साहब को सब पता है कि क्या होने वाला है, और पाकिस्तान कब बन रहा है•••इतना ही नहीं, जिस वक्त पाकिस्तान का एलान होगा, उस वक्त हिन्दुस्तान के मुसलमानों को किस तरह पेश आना है, यह भी वे बतायेंगे।

ये बातें चल ही रही थीं कि मौलाना साहब बुर्राक अलीगढ़ी पैजामा और शेरवानी पहने तशरीफ लाए। उनकी शेरवानी के बटन चाँदी के थे और उनमें चाँद-तारा बना हुआ था। उनकी अँगुलियों में कई अँगूठियाँ थीं और आँखों में सुरमें की हलकी-सी रेख, मुँह में गिलौरियाँ और सर पर फैज़ टोपी।

सीले हुए मसनद और भीगी हुई जाजम पर मौलाना साहब

बेहिचक बैठ गये। उनकी दाहिनी तरफ था यासीन और बाईं तरफ साईं।

मौलाना ने बहुत बड़प्पन से समझाना शुरू किया— "तो बिरादराने कौम ! मुझे बहुत खुशी है कि आज शाम मैं आप सबके बीच में हूँ। जिस तरह हालात रंग बदल रहे हैं, और मुल्क में होने वाली सियासी तब्दीलियों के आसार नजर आ रहे हैं, उनसे अब यह साफ जाहिर है कि अपना पाकिस्तान बनकर रहेगा। हिन्दू कांग्रेस और अंग्रेज चाहे जितना जोर लगा लें, अब उनके किये कुछ होता नहीं···यह बात दुनिया पर जाहिर हो चुकी है कि हिन्दोस्तान में दो कौमें रहती हैं, और अब वे साथ-साथ नहीं रह सकतीं।

"हिन्दू कांग्रेस ने विधान बनानेवाली सभा में शामिल होना मंजूर कर लिया है और जो अन्तरिम सरकार बन रही है, उसमें शामिल होना नामंजूर किया है। कायदे आजम जिन्ना साहब ने बड़े लाट से कहा कि अगर कांग्रेस अन्तरिम सरकार में शामिल नहीं होती तो और बकिया पार्टियों को लेकर अन्तरिम सरकार बना ली जाए। वायसराय ने इस बात को नहीं माना, इसलिए जिन्ना साहब ने पूरी स्कीम ही ठुकरा दी है। फिर भी बड़े लाट ने अपने वजीर चुन लिये हैं, उसके खिलाफ सोलह अगस्त को 'प्रोटेस्ट डे' मनाने का एलान कायदे आज़म ने किया है···।

"फिलहाल मैं यही कहना चहता हूँ कि आप सब मुसलमान सोलह अगस्त का दिन एक रंज-भरे दिन की तरह मनाएँ। काले झण्डों का जुलूस निकालें और यहाँ के अफसरान पर यह जाहिर कर दें कि मुसलमान इस दिन को मातम का दिन मानता है। वह हिन्दू सरकार के मातहत नहीं रहेगा। और हिन्दुओं के पिट्ठू अंग्रेजों की भी मुखालफत करेगा···।"

मौलाना साहब ने जो कुछ फर्माया था, उसे लोग समझे तो नहीं थे पर उन्हें यह जरूर लगा था कि मुसलमान कौम के साथ अंग्रेज अब दगा कर रहा है और दिन बुरे आ रहे हैं। मौलाना साहब के जाने के

बाद मौलवी साहब कुछ देर तक अपनी बातें समझाते रहे, तभी किसी ने खबर दी—"दरोगा साहब आये हैं।"

सब लोगों के कान खड़े हो गये, मकसूद ने कहा, "शायद बच्चन पकड़ा गया है।"

तभी दरोगा साहब ने आवाज लगाई, "मकसूद साहेब।" मकसूद उन्हें वहीं भीतर दहलीज में ले आया। दरोगा ने जमा लोगों को देखते हुए कहा, "कहिए साहबान ! तो अपना काम नहीं बनेगा ?"

"बनेगा क्यों नहीं साहब ! बच्चन के दोनों बच्चे नसीबन के यहाँ हैं। वह वक्त-बेवक्त बच्चों को देखने आएगा जरूर और उसी वक्त उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। और कोई रास्ता नजर नहीं आता।"

"तो नसीबन के घर पर नजर कौन रखेगा, पुलिस का आदमी रहेगा तो वे सनक जाएँगे और बच्चन कभी नहीं आएगा··· इसलिये आप लोगों में से ही कुछेक को यह काम करना पड़ेगा। अगर बच्चन नहीं पकड़ा जाता तो अपनी बड़ी किरकिरी होगी···अब आप लोग साथ दें तो काम बन सकता है।" दरोगा बोला।

"साथ क्यों नहीं देंगे साहब ! अरे हम और किस दिन काम आएँगे आपके ?" सुबराती ने अदब से कहा और पूरा जिम्मा ले लिया।

दरोगा साहब के चले जाने के बाद साईं नसीबन के घर की ओर गया था। भीतर से लैम्प की रोशनी आ रही थी और टाट के पीछे कुछेक लोग बैठे नजर आ रहे थे। साईं ने आवाज देकर नसीबन को बुलाया। नसीबन के हाथ आटे में सने थे। साईं को देखकर उसकी भौंहों पर बल पड़ गये थे पर अँधेरे में साईं यह देख नहीं पाया। साईं बहुत अपनेपन से नसीबन से बोला, "अरे इस वक्त भी खाना बना रही हो नसीबन !"

"तो और क्या करूँ ? इतने बच्चे हैं घर में। करना तो पड़ता ही है।" साईं पास पड़े पत्थर पर बैठ गया था, एक क्षण ठिठक कर उसने बहुत चतुराई से कहा था, "तू खुद ही तो मुसीबत पाल लेती

है। खुद परेशान होती है और लोगों को अंट-संट बात करने का मौका देती है'''अब यही बच्चन वाली बात है नसीबन। किसकी ज़ुबान पर रोक लगाई जाए, जो जिसके मुँह में आता है, बकता है'''बरदाश्त तो मुझसे भी नहीं होता, पर करूँ क्या, तू तो खुद उन्हें यह सब कहने का मौका देती है''''।''

''लोगों का क्या है साईं ? जो मन में आए, बकें'''मैं क्या कर सकती हूँ'''।''

''नहीं, नसीबन, यहीं तू गलत सोचती है,''''भला बता, यह कोई कैसे बर्दाश्त करेगा कि तेरा एक हिन्दू के साथ इतना मेल-मिलाप हो। अपने लोग भी हैं, पर बच्चन के साथ तेरी रब्त-जब्त किसी को नहीं सुहाती'''कोई कैसे बर्दाश्त करेगा कि इस तरह एक मुसलमान घराने की औरत हिन्दू के घर बैठ जाए।''

''क्या मतलब ?'' नसीबन के माथे पर पसीना छलछला आया था, ''साईं, कहने वाला कहा करें'''पर मेरा अल्लाह जानता है। दिल पे हाथ रखकर ईमान से कहना साईं—अब पचास के आस-पास आकर क्या यही सब बाकी रह गया है मेरे लिये'''इस उमर में हूँ और लोगों को शरम नहीं आती ऐसी बातें करते हुए और तुम खुद सुनते हो, और शिकायत-शिकवे लेकर आते हो, खुद जवाब नहीं दिया जाता तुमसे ?''

कुछ क्षणों के लिए साईं बगलें झाँकने लगा था। फिर उसने नसीबन की बात का रुख बदलते हुए कहा—''उम्र अपनी जगह है नसीबन।''

''तो अब आसनाई करने के दिन हैं मेरे ? जो मन में आए सोचो साईं'''मेरा क्या बिगड़ता है ?''

नसीबन की बात बीच में काटकर बड़े भेद-भरे लहजे में साईं ने कहा—''अब देखो न, लोग तरह-तरह की बातें कहते हैं'''इलाही कह रहा था कि बच्चन ने अपनी बीबी का सब चाँदी का जेवर तक तुम्हें दे दिया और तुम घरवाली की तरह उसका सब कुछ'''।''

नसीबन बिफर आई थी, ''साईं, तुम्हारा मतलब क्या है ? तुम चाहते क्या हो ?''

''मैं काहे को कुछ चाहूँगा'''पर नसीबन, यही समझाने मैं आया

था कि वक्त बहुत बुरा आ गया है···पूरे मुल्क में हिन्दू कौम मुसलमानों के खून की प्यासी हो रही है और तू है कि बच्चन के लौंडों को घर पर उठा लाई···उसके पीछे पुलिस पड़ी है और तू है कि अपनी नादानियों से बाज नहीं आती। कल को खुदा न करे, कुछ गड़बड़ हुआ तो यही बच्चन तेरे खून का प्यासा हो जायेगा···हमने तो यहाँ तक सुना है कि डाक बँगले में चोरी करके बच्चन नदी पार के ठाकुरों के यहाँ छिप गया है और वहाँ जो फौजें मुसलमानों के कत्लेआम के लिए बन रही हैं, उनका सरगना बन गया है। और तुम उन सँपोलों को दूध पिला रही हो···।"

"कैसी बात करते हो साईं? कहाँ की बातें हैं ये सब? तुम भी अच्छी तरह जानते हो कि बच्चन का चोरी में कोई हाथ नहीं है, दरोगा उससे किसी बात पर नाराज हैं, इसीलिए इस चोरी में उसे फाँसा गया है और तुम सब लोग उस बदमाश दरोगा का साथ दे रहे हो।" नसीबन अपने को रोक नहीं पा रही थी।

साईं पत्थर से उठकर खड़ा हो गया था। चलते-चलते उसने फिर एक बार जैसे नसीबन को आगाह किया—"अब सोच लो तुम अपना भला-बुरा···मेरा फर्ज था तुम्हें समझा देना, सो पूरा कर दिया, अब जैसी तुम्हारी मर्जी···जबरदस्ती तो मैं कर नहीं सकता···कल को आफत-मुसीबत पड़ेगी तो कोई साथ नहीं देगा।"

"अरे तो कौन-सा कहर टूटने जा रहा है, जो डरा रहे हो साईं?"

"तेरी समझ में कुछ नहीं आयेगा, तू तो अंधी हो रही है अंधी।" कहता हुआ साईं अपनी कोठरी की ओर चला गया। चिपचिपाती गली में वह छप्परों के नीचे-नीचे होता हुआ जा रहा था कि दूसरी तरफ वाली पटरी पर एक छाया उसे देखकर कुछ ठिठकी और खामोशी से खड़ी रह गई।

साईं जब आगे निकल गया तो वह छाया जल्दी-जल्दी बढ़ी और नसीबन के घर में समा गई।

"अरे सलमा तुम!" रोटी सेंकते हुए नसीबन ने अचरज से कहा, "क्यों, क्या बात है जो इस वक्त आना पड़ा?"

सत्तार छप्पर के अड़ाने के पास भौंचक्का-सा खड़ा था, उसकी बाँहों में खून की हरकत तेज हो गई थी और उसे लगा कि शायद अब इसी वक्त उसे कुछ करना होगा। वह सलमा की तरफ एकटक देख रहा था कि उसके मुँह से बात निकले और वह जाकर मकसूद का गला दबा दे ·· हमेशा के लिए वारा-न्यारा कर दे।

तभी सलमा ने कहा था, "जरा ख्याल रखना अपना और आने-जाने वालों का। सुना है कि दरोगा ने सुबराती को बच्चन को पकड़ने के लिए तुम्हारे घर पर तैनात किया है। अभी घर में यही बातें हो रही थीं। सुबराती भी वहीं था, अभी तीनों कहीं निकलकर गये तो मौका पाते ही मैं चली आई···अच्छा, अब चलती हूँ···।"

जाते-जाते सलमा ने एक भरी-भरी नजर सत्तार पर डाली थी, खामोशी से ही जैसे वह बहुत कुछ कह देना चाहती थी। सत्तार उससे कुछ पूछने के लिए अपने को मन-ही-मन तैयार कर रहा था कि वह पर्दा उठाकर बाहर हो गई···वह जब तक कुछ बात करने के लिए तैयार हो, तब तक सलमा आधी गली पार कर गई थी और दरवाजे के बाहर चौखट पर अटक कर वह देखता रहा था—सलमा की चाल में भारीपन-सा समाया हुआ था···और उसे लगा था, जैसे किसी अनजानी मार से उसका अपना बदन उस क्षण बुरी तरह दुख रहा है···वह चलने लायक नहीं है।

चौखट पर खड़ा-खड़ा वह अपने खयालों में डूबा हुआ था कि गड़गड़ाहट के साथ एक तेज बौछार बिखर गई। मुँह पर पड़ा पानी पोंछता हुआ वह भीतर भागा। नसीबन बच्चों के लिए खाना परोस रही थी। वहीं पास बैठकर उसने धीरे से पूछा, "क्यों, शायद आज रात बच्चन इधर का चक्कर लगाए?"

"कम्बख्ती आई होगी तो जरूर लगाएगा।" नसीबन बोली।

"बारिश बहुत तेज हो गई है।"

"अरे उसका कोई भरोसा नहीं, बारिश नहीं, कहर टूटे···अगर उसे आना होगा तो आएगा।"

"यहाँ तो जाल बिछा है।"

"तो कोई क्या करे ? आएगा तो फँसेगा । रहे बच्चे, सो मैं देख रही हूँ···जैसा बाहर है वैसे ही जेल के भीतर । हमें क्या फरक पड़ता है ? हाँ नहीं तो ।" नसीबन बड़बड़ाती जा रही थी, "और दुश्मनी करे पुलिस वालों से····कोई कहाँ-कहाँ हाथ लगाएगा ?"

और खाना खाकर उसी मूसलाधार बारिश में सत्तार बाहर निकल गया था, चलते-चलते इतना कह गया था, "बच्चन को आगाह कर जाऊँ, क्या पता वो इधर आ ही जाए····।"

* * *

नदी का पाट फैल गया था । नदी की सतह पर बारिश की लगातार बूँदें ऐसे गिर रही थीं जैसे नदी और आसमान के बीच सूत पिरो दिये गये हों । अँधेरे में वह झीना परदा बड़ा स्वप्निल लग रहा था ।

सत्तार भीगता हुआ धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था । मैदान में जगह-जगह पानी के शीशे चमक रहे थे—धुंधले और स्याह शीशे । श्मशान के ताड़ों पर पानी बहुत शोर कर रहा था और मैदान में मेढक टर्रा रहे थे । ताड़ों पर बैठे हुए गिद्ध चुपचाप भीग रहे थे । सत्तार आगे बढ़ता जा रहा था···इस वक्त उसे यह भी अंदाज नहीं था कि वह क्यों बढ़ता जा रहा है ? क्या वह सचमुच बच्चन के लिए हमदर्दी की वजह से इस आँधी-पानी की रात में निकल पड़ा है ? फिर उसे लगा था कि एक ही तार है जिससे वह बँधा हुआ है···और वह है सलमा की बात का, बच्चन के प्रति उसकी चिन्ता का ।

दूर पर, नदी किनारे मछुआरों की बस्ती थी···ऐसे मछुआरे जो खेतीबारी भी करते थे और मौसम होने पर ठेका लेकर मछलियाँ भी पकड़ते थे । नदी के रेतीले पाट में वे ककड़ियाँ, खरबूजा-तरबूज और कुछ साग-सब्जियाँ भी उगा लेते थे तथा ऊपरी मैदानों में बाजरा, रौंसा वगैरह छिटक कर कुछ पैदा कर लेते थे । गिने-चुने मकान थे उनके, बरसात में यह मकान भी कभी-कभी छोड़ने पड़ जाते थे और एकाएक नदी का पानी बढ़ जाने से खेत भी चौपट हो जाते थे । इसीलिए कोई भी

ऐसा धन्धा करने में उन मछुआरों को परेशानी नहीं होती थी, जिससे चार पैसे हाथ में आते हों।

बच्चन के कच्ची शराब के धन्धे में मानिक और उसके दोनों भाई भी हाथ बँटाते थे। ज्यादातर शराब की मशकें किसी सुनसान जगह पर ही रखी जाती थीं और नाव द्वारा इस पार लाई जाती थीं। पुल से लाना उतना आसान काम नहीं था···एक तो चुंगी-टैक्स की झोपड़ी वहीं थी, दूसरे महसूल का रवन्ना काटने वाला मुंशी धाकड़ पियक्कड़ था। वह सुराही में तीन-चार बोतलें उलटवा लेता था और उसके बावजूद कसे रखता था। फिर चौकीदार भी कम नहीं था, वह बख्शीश ऊपर से लेता था और बड़ा कुल्हड़ निकालकर उसी में घट-घट पी जाता था। नुकसान तो इससे बहुत नहीं होता था, पर इतनी घूस देने के बाद भी मुंशी के पैर के अँगूठे के नीचे ही रहना पड़ता था।

इसीलिए बच्चन के मानिक से साठ-गाँठ की थी, और उसे अपने व्यापार में साझा दे दिया था। उसकी नाव अपनी थी, इसलिए किराये-विराये का चक्कर भी नहीं था।

और फिर बच्चन के लिए सबसे बड़ा आकर्षण थी, मानिक की घरवाली—रुकमिन, जिसे वह भौजी कहकर पुकारता था और जब भी मशकें लाता, उसे बगैर पिलाए नहीं जाता था। रुकमिन जब पीकर बहकती थी तो बच्चन को बड़ा रस मिलता था···खास तौर से इसलिए भी कि वह मानिक को तब बहुत सताती थी।

जिस दिन मशकें उतरने वाली होतीं, रुकमिन रोहू या पढ़ीन मछली जरूर पकड़कर लाती और तलकर रख लेती थी। अंगुल भर की कलेजी का टुकड़ा होता, पर उसी पर मानिक से उसका झगड़ा होता—कभी-कभी तो मारपीट तक हो जाती। बच्चन तभी रुकमिन को कन्धे से पकड़कर दो घूंट और पिला देता तब उसके चारों ओर भीगी काली मिट्टी, पसीने और मछली की सिसआइंद भर जाती···रुकमिन की बाँहों में उसे मछलियाँ-सी पड़ती महसूस होतीं और उसका शरीर फरकने लगता था।

पता नहीं उस वक्त रुकमिन को क्या होता था कि बच्चन महसूस

करने लगता था कि वह उसी के पास सटी बैठी रहना चाहती है। उसकी तनगंध से वह बेसुध होता था। पर वह जब भी कसकर पकड़ना चाहता, वह मछली की तरह हाथों से फिसल जाती थी। बच्चन रह-रहकर तड़पता था और उसे मात्र इसी बात से सन्तोष मिल जाता था कि रुकमिन मानिक को उसके सामने बेइज्जत कर देती थी। पर बच्चन ने कभी अकेले में मानिक को अपनी इस खुशी का एहसास नहीं होने दिया। मानिक से वह बिगाड़ भी नहीं करना चाहता था।

जब से डाकबँगले में चोरी हुई थी और पुलिस उसके पीछे पड़ी थी, वह बस्ती में नहीं जा पाया था। शहर में घुसने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। पुलिस के रुख का कुछ पता नहीं चल रहा था, और धन्धे में बराबर नुकसान हो रहा था।

ऐसा भी कोई नहीं था, जिससे वह खुलकर बात कर लेता। लड़के की हड्डी जब टूटी थी, तब नसीबन अपने-आप हो आई थी और सब कुछ सँभालकर बैठ गई थी। उस वक्त बच्चन को बड़ा सहारा मिला था। पर जब बस्ती में उसे लेकर फुसफुसाहट शुरू हुई थी तो बच्चन ने पूरी आँखें खोलकर नसीबन को देखा था···शायद कहीं पर···शायद कुछ···पर दूसरे ही पल उसे अपने पर गुस्सा आया था और मन उचाट हो गया था।

नसीबन के बाएँ हाथ की बीचवाली अँगुली का टूटा हुआ नाखून उसे बार-बार कुछ याद दिलाता था···।

जब माँ मरी थी और उस पर कपड़ा डाल दिया गया था तो बायाँ हाथ भूल से बाहर रह गया था···और उसकी बीचवाली अँगुली का नाखून कुछ इसी तरह टूटा हुआ था। आँसू भरी आँखों के पार से उसकी नजर बार-बार उसी नाखून पर अटक जाती थी और मन भर-भर आता था।

उस रात जब उसे बच्चों को छोड़कर भागना पड़ा था तो वह मृत बीबी का चाँदी का जेवर नसीबन को सौंप आया था····"मैं इसे कहाँ रखूँगा।"

फिर मन के चोर ने सोचा था—यह गलत किया।

* * *

और एक दिन नदी किनारे मानिक के साथ बैठे-बैठे जब वह गप्पें लड़ा रहा था तो पता नहीं मन की किस रौ में उसने फूंक लेने के लिए झूठ-मूठ गढ़कर बात सुनाई थी, "मानिक भाई, अपना तो एक इंतजाम है, वहीं बस्ती में। बड़ी चौचक औरत है।" कहते-कहते उसे किसी असलियत की जरूरत पड़ी थी जो कि उसकी बात को वजन दे सके, तो उसी धुन में उसने नसीबन की एक मूरत सामने खड़ी करके सब कुछ बता डाला था। "उसका दिल तो बहुत दिनों से था, पर मैं कुछ ख्याल ही नहीं करता था। एक दिन लड़के की हड्डी टूटी तो वह अपने-आप आ गई, फिर रहना-बसना हो गया।" बच्चन बताता जा रहा था और साथ ही यह भी कह गया, "मैंने तो उसे मन से मान भी लिया, सो घरवाली का सब जेवर भी उसे सौंप दिया...।"

उस वक्त कच्ची जरा ज्यादा चढ़ी हुई थी और रुकमिन भी पहले से जरा ज्यादा अच्छी तरह पेश आई थी, इसी से मन में शक बैठ गया था कि कहीं मानिक उसके अंदरूनी खयालों को भाँप न जाए...और वह गढ़-गढ़कर बातें सुनाता गया था—"है बड़ी सुन्दर! भरा हुआ जिसम है और मन की बड़ी नेक!"

पर उसी क्षण उसे लगा था कि यह मूरत नसीबन से कहीं दूर चली गई थी—यह उसके मन की औरत की तस्वीर थी...शायद रुकमिन की।

मानिक सब कुछ चुपचाप सुनकर हाँ-हूँ करता रहा था। बीच-बीच में रस लेने के लिए वह एकाध सवाल भी कर बैठता तो बच्चन मजा ले-लेकर बातें गढ़ता जाता था और सुनाता जाता था।

"नाम क्या है?..." मानिक ने पूछा था तो वह अचकचा गया था और दबसट में पड़ गया था। नसीबन का नाम उसकी जबान पर नहीं आया था, मन में घृणा-सी भर गई थी कि वह किसे लेकर ये बातें कह गया है?...बीच वाली अँगुली का टूटा हुआ नाखून! उसका सिर भन्ना उठा था और मन पश्चात्ताप से भर आया था। चुपचाप उसने मानिक

की तरफ देखा था—मानिक की आँखों में पिछले दिनों-से निरन्तर डूबते-उतराते शक की परछाईं उसे तल में बैठती दिखाई दी थी ।

इस झूठ-मूठ के किस्से से मानिक का व्यवहार ही बदल गया था। और उसे यह बहुत अच्छा लगा था—अब वह रुकमिन से खुलकर खेल पायेगा और मानिक के मन में संदेह नहीं बैठेगा ।

पर इस सब में नसीबन को सान लेने के कारण, रह-रहकर दिल कहीं कचोटता था और वह तस्वीर बन ही नहीं पाती थी जो रौ में वह मानिक के सामने खींच गया था। जब भी वह सोचता तो मन में कहीं चोट लगती थी कि नसीबन ने उसके साथ क्या किया और वह क्या सोच गया ।

इससे भी ज्यादा तो ग्लानि उसे तब हुई थी जब एक दिन रुकमिन से भी उसने इसी तरह की बातें कह डाली थीं…अपना रोब जमाने के लिए ।

मानिक और रुकमिन के साथ उसके संबंध ऐसे हो गए थे कि अब वह कही हुई बातों से पलट भी नहीं पाता था। बस्ती में कोई ऐसा नहीं था, जिसके पास बैठकर मन के इस सारे गुबार को निकाल ले। और जब से ये किस्से हुए थे, तब से उसका कहीं भी आना-जाना बंद हो गया था। बहुत हिम्मत करके वह नदी पार मानिक के घर आता था। नदी के उस पार दूसरे जिले का इलाका था और यहाँ की पुलिस तिलमिला कर रह जाती थी ।

आज मशकें भी नहीं उतरी थीं। मछुआरों को जो जरूरत पड़ी थी, तो मानिक के घर से निकल आई थी। रुकमिन ने अलग के बचाकर थोड़ी-सी रख ली:थी। मछलियाँ भी पानी के तेज बहाव के कारण हाथ नहीं आई थीं, सो उसने सूखे-झींगे तल लिए थे। ढिबरी की रोशनी में तीनों बैठे पी रहे थे और अपनी ही बातों में मशगूल थे ।

* * *

सत्तार चलता-चलता नदी किनारे के गाँव तक पहुँचा तो सूनेपन से

घबरा गया। बारिश की वजह से सन्नाटा और भी गहरा रहा था। कहीं रोशनी भी नजर नहीं आ रही थी। गनीमत यही थी कि मछुआरों के कुत्ते भीतर दुबके हुए थे, नहीं तो अब तक हमला हो जाता। हवा की तेजी के कारण उसे कुछ-कुछ सर्दी-सी लग रही थी। दो-तीन मिनट रुककर वह सुन-गुन लेता रहा, तभी उसे किसी के हँसने की आवाज सुनाई दी और उसी के साथ ढिबरी की चमक भी दिखाई दी। वह कुछ और पास पहुँचा तो बातचीत सुनकर उसे यकीन हो गया कि यही घर उस मछुआरे का है, जहाँ बच्चन का उठना-बैठना है। एक बार बच्चन ने ऐसे ही जिक्र किया था।

आगे बढ़कर उसने आवाज लगाई—"चौधरी! ओए चौधरी!!"

"अब एक बूंद भी नहीं है।" रुकमिन भीतर से बोली थी तो मानिक ने उसे डपटा था, "पहले सोच-समझ लिया कर तब आवाज दिया कर।"

"तो और कौन मौत का मारा आएगा इस बेरा-बखत। अद्धा-पउआ की जरूरत पड़ी होगी तो चला आया होगा।"

सत्तार ने फिर आवाज लगाई तो बच्चन निकलकर देखने आया। सत्तार को सामने देखकर उसके मन में सनाका हो गया—जरूर कुछ और गड़बड़ हुआ है, नहीं तो यह इस वक्त क्यों आता? सकपका कर बच्चन ने पूछा, "खैरियत तो है?"

"हाँ, हाँ, सब ठीक-ठाक है।"

"इन वक्त कैसे आना हुआ?"

"तुम्हें आगाह करने आया था। सुबराती दिन-रात घर पर पहरा दे रहा है, तुम भूलकर भी उधर मत जाना। बस, इतना ही कहने आया था···" सत्तार ने कहा और उसे अपने कुछ देर पहले के जुनून पर खुद ही हँसी आ गई—यहाँ तक चला आया! इस आँधी-पानी में!

"भीतर तो आओ।" कहते हुए बच्चन उसे घसीट ले गया। मानिक और रुकमिन से जान-पहचान हुई और एक कुल्हड़ उसके सामने भी आ गया।

दो-चार घूंट के बाद सत्तार ने शरीर में कुछ सनसनाहट और

जिन्दगी-सी महसूस की। बड़ी देर तक मस्ती की बातें होती रहीं और सत्तार ने यह भी बताया कि साईं, मकसूद और यासीन किस तरह की बातें फैला रहे हैं···पर शिकायत तो उसे शहर के हिन्दुओं से भी थी, बड़ी दबी जबान में वह सब बता गया था। लेकिन ये बातें सभी के दिमाग के बाहर की थीं। इसलिए रुकमिन ने दूसरी बात छेड़ी—"अरे वह कौन औरत है जिसने बच्चन का माल दबा रखा है ?" उसने बेलाग ढंग से कहा था, पर बच्चन का चेहरा फक् हो गया था, उसने बात घुमाने के लिए कहा—"अरे वह वहाँ कहाँ है।"

"तुम्हीं तो कहते थे, वहीं की है और अब भी वहीं रहती है ! कतरा काहे को रहे हो, कोई और बात हो तो बताओ···" रुकमिन पर नशा हावी हो रहा था और ऐसे में उससे बहस करना या उसकी बात को काटना मुसीबत मोल लेना था। बच्चन भीतर ही भीतर बहुत परेशान था—कहीं सत्तार सब कुछ समझ न जाए।

मानिक भी दूसरी तरह से रस ले रहा था। जो कुछ उसने सुना था, उसी के सहारे वह भी मजा लेने लगा—"बहुत खूबसूरत है वह लुगाई··· क्यों सत्तार भाई ?"

सत्तार सब समझ रहा था—पर बातों के कोण उसकी समझ में नहीं आ रहे थे। बच्चन बीच-बीच में कुछ ऐसी बात जोड़ता कि नसीबन की बनती हुई तस्वीर में कोई दूसरा ही नजर आने लगता।

तभी रुकमिन ने कहा—"बच्चे उसी औरत के पास हैं न।" बच्चन चाहते हुए भी 'न' नहीं कह पाया, उसने जवाब देने के बजाय कुल्हड़ उठाया और घट-घट पूरा पी गया।

सत्तार समझकर भी नासमझ बना बैठा था, बात में मजा लेने के लिए उसने इतना ही कहा था, "अरे, वहाँ इनकी एक हो तो कोई बताए भी···।"

इस बात से बच्चन को बड़ा सहारा मिला था। सारी बातें सध गई थीं। फिर भी वह हैरान-सा तीनों को देखता रहा था। बारिश कुछ-कुछ थमने लगी तो सत्तार बाहर निकलने के लिए उठा, "अच्छा अब चलूंगा।"

चलते समय रुकमिन ने उससे सिफारिश की, "अरे भइया, इसका माल जैसे-तैसे दिलवा दो न। बहुत परेशान है यह। यही तो जमापूंजी है बेचारे की।"

सुनकर सत्तार हंसता रहा। उसके पास कोई जवाब भी नहीं था। बच्चन उसे छोड़ने बाहर आया तो बुंदियाते में साथ हो लिया।

कुछ देर दोनों खामोश चलते रहे। कुछ और आगे जाकर बच्चन ने ही खामोशी तोड़ी, "रुकमिन की बात का अंट-शंट मतलब मत लगाना। वह ऐसे ही बकती रहती है। जो मुंह पर आ गया, दे मारती है।"

उसकी बात सुनकर सत्तार का मन खट्टा हो गया था।

और लौटते हुए सत्तार को फिर अपना आना बेकार-सा लगने लगा था। नसीबन को लेकर जो-जो और जिस-जिस तरह की बातें उसने सुनी थीं, उनसे उसकी परेशानी और बढ़ गई थी। वह कुछ भी समझ नहीं पा रहा था। कैसा माल और कैसी औरत। बस्ती में और कोई औरत भी ऐसी नहीं जिससे बच्चन की रब्त-जब्त रही हो। नसीबन के अलावा और कौन हो सकता है? बहुत सोचने के बाद वह एक ही नतीजे पर पहुँचा था—हो चाहे जो कुछ, पर बच्चन नसीबन के बारे में अच्छा खयाल नहीं रखता। और एक नसीबन है कि···

घर पहुँचकर वह लेट गया था। सीलन के मारे नींद नहीं आ रही थी। चार बच्चों के उस तरफ नसीबन लेटी थी—नींद में बेसुध।

जब सब कुछ समझ से बाहर हो गया और अपनी मुसीबतों और दिली परेशानियों का भी कोई हल नहीं निकला तो दिमाग एक ही जगह जाकर टिक गया—जिन्दगी का यह ढर्रा बदलना चाहिए···कोई और जिन्दगी हो···जहाँ मजबूरियाँ खत्म हो जाएँ शायद उस बनने वाले पाकिस्तान में नई जिन्दगी शुरू करने का मौका मिले और दिल की यह जलन और जिन्दगी की यह थकान मिट जाए।

पर पाकिस्तान के बारे में सोचते ही जो पहली तस्वीर उभरती थी—वह मकसूद और यासीन की थी। उसे दूसरे ही क्षण लगा था कि पाकिस्तान यही तो होगा—जहाँ मकसूद और यासीन होंगे, वहीं पाकिस्तान होगा। तब वह कैसे जिएगा?

और सलमा। वह क्या करेगी ? अब तो उसके पेट में बच्चा भी है, जहाँ उसका शौहर जाएगा, वहीं तो वह भी जाएगी···और क्या करेगी ? उसके लिए और रास्ता भी क्या है ?

इन्हीं खयालों में डूबा-डूबा वह उनींदा हो आया था। सुबह आँख खुली तो देखा—नसीबन बच्चों को पढ़ने जाने के लिए घेर रही थी।

कुछ देर बाद वह सब बच्चों को रेवड की तरह हाँकती हुई ले गई थी। बच्चन के दोनों लड़कों के उसने खास तौर से काजल डाला था और खुद ही बस्ता बनाकर दिया था।

नसीबन के लौटते ही घूमता हुआ साईं आ गया था। कुछ देर वह इधर-उधर की बातें करता रहा फिर बोला, "नसीबन, लगता है अब बवाल खड़ा हो जाएगा।"

"काहे का बवाल ?"

"इन्हीं, बच्चन के बच्चों को लेकर। हिन्दू-मुसलमान होने की बात नहीं है, पर तुम्हारी वजह से पूरी बस्ती पर आफत टूट पड़ेगी। पुलिस अभी तक कुछ कर नहीं रही है, पर उसे डाकबँगले के चोर-मुलजिमों को पकड़ना ही है। अगर बच्चन नहीं पकड़ा जाता तो कोई यह मानने को तैयार नहीं होगा कि हम बस्ती के लोग उसका साथ नहीं दे रहे हैं।" कहकर जवाब सुनने के लिए साईं चुप हो गया था।

नसीबन कुछ देर तो खमोश रही, पर साईं को उत्तर के लिए अड़ा देखकर बोली, "साईं, असल बात यह है कि ये बच्चे तुम्हारी आँखों में करक रहे हैं। मेरे लिए धरम-करम का सवाल नहीं है साईं, सीधी-सी बात है, मुझसे इन बच्चों को बिलखता नहीं देखा गया, सो ले आई। कल को इनका बाप आ जाएगा, तो चले जाएँगे।"

नसीबन की बात को सत्तार सुन रहा था और मन ही मन कुढ़ रहा था।

"खैर, दो बार समझा चुका, अब जैसी तुम्हारी मर्जी ?" साईं नाराज होकर चला गया।

पहले तो सत्तार ने सोचा, कुछ न कहे, पर रहा नहीं गया। वह उसे बुलाकर भीतर ले गया और बड़ी मुश्किल से बोला, "बुआ, कुछ

बात मैं भी तुमसे करना चाहता था। साईं की बात में कुछ वजन तो है। बच्चन का तुम जितना भरोसा करती हो, वह उतना करता है या नहीं, इसका भी तुम्हें पता नहीं। क्या पता, कल तुम्हारे ऊपर चार इल्जाम आ जाएँ।"

"कैसे इल्जाम?"

"अब यह तो तुम्हीं बेहतर जान सकती हो।"

"गुनाह तो कोई किया नहीं सत्तार···रह गई बच्चन की बात, सो वह इतना ओछा आदमी नहीं है, कुछ परख मुझे भी है।"

नसीबन का विश्वास देखकर सत्तार का दिल डूबने लगा था। फिर भी उसने कह ही दिया, "नदी किनारे वाले गाँव में तुम्हें और बच्चन को लेकर पचास तरह की ऊल-जलूल बातें होती हैं। कोई कहता है कि तुम बच्चन के घर के जेवर चुरा लाई हो, कोई कहता है।"

यह सुनकर नसीबन का मन थोड़ा घबराया था, फिर अपने को सँभालते हुए वह बोली थी, "कहने को तो जितने मुँह उतनी बातें, बच्चन तो नहीं कहता।"

"खुद मुझसे तो नहीं, पर मेरे सामने यह बात हुई थी और बच्चन ने इनकार नहीं किया। मेरी वजह से वह बात को बरा जाना चाहता था, पर वह पैंतरा ही ऐसा पड़ गया कि बात खुलती चली गई···" सत्तार कहते-कहते रुक गया था। उसने नसीबन की आँखों में झाँका था—वहाँ बादल से घुमड़ रहे थे···और एक उठता हुआ सैलाब नजर आ रहा था। सत्तार को अपने पर खीझ भी हुई कि उसने यह सब क्यों कहा, पर अब तो तीर निकल चुका था। कोई चारा नहीं था।

"खैर, वह अपनी जाने।" कहकर नसीबन पानी पीने के लिए उठ गई और सत्तार फिर उसके सामने नहीं आ पाया था।

* * *

सुबह की धूप दोपहर की चिलचिलाती गर्मी में बदलती जा रही थी। बादल के न होने से गर्मी की धार बहुत पैनी हो गई थी। रात का

कीचड़ ऊपर से सूखता जा रहा था और पतली मिट्टी की पपड़ियाँ बनकर चटक गई थीं।

सत्तार इफ्तिकार की कोठरी की ओर गया—यह जानते हुए भी कि वह नहीं होगा, पर इफ्तिकार वहीं था। घोड़ा ऊपर पजावों पर चर रहा था और इक्का खड़ा था।

कोठरी में बैठा इफ्तिकार घोड़े के घुंघरू बजा रहा था—एक ताल पर। सत्तार को देखकर चुप हो गया।

"क्यों, अड्डे नहीं गए ?"

"सवारी नहीं मिलती तो जानवर भी उकता जाता है। इसीलिए अब उसे छुट्टी दे दी है।" फिर घुंघरुओं को बड़े बेमन से कोने में फेंकते हुए वह बोला था, "अब क्या होगा सत्तार भाई ?"

"काहे का ?"

"पेट का।"

"क्यों ?"

"हाल नहीं देख रहे हो ?"

"तो क्या किया जाए ?"

"यही कि पाकिस्तान चला जाए।"

"पर वह अभी है कहाँ ?"

"बन जाएगा।"

"हो सकता है।"

"हो नहीं सकता, होगा। शहर में हाफिज जी कह रहे थे—अब पाकिस्तान बनने में देर नहीं···।"

"पर बनेगा कैसे ? अपनी समझ में तो यह बात ही नहीं आती। मान लो यह पाकिस्तान बन गया, तब भी क्या फरक पड़ता है ?" सत्तार ने जानने के लिए पूछा था।

"अरे, जरा उधर देखना।" इफ्तिकार की निगाह सड़क से बस्ती की ओर कटने वाली पगडंडी पर थी। सत्तार ने देखा तो उसका माथा ठनका। काली टोपी और खाकी नेकर वाले संघी चले आ रहे थे···वह कुछ समझ नहीं पाया।

"खतरा है। लाठियाँ देख रहे हो।"

"लगता तो यही है···पर अब किया क्या जाए ?"

"जो होगा सो करेंगे—यह बड़े जालिम होते हैं और बड़े कट्टर हिन्दू होते हैं। इनसे पार पाना मुश्किल है।" कहते हुए वह उठा और टीन के बक्से में से एक करौली निकालकर उसने तहमद में छुपा ली।

सत्तार की समझ में जब कुछ नहीं आया तो उसने घोड़े का चाबुक ही थाम लिया।

वे सात-आठ संघी स्वयंसेवक बगल से गुजरे तो सत्तार ने देखा—रतन भी उनमें था। मस्जिद के नुक्कड़ पर उन्होंने नसीबन का अता-पता पूछा और उसके घर की ओर मुड़ गए।

वे संघी स्वयंसेवक गलियों से गुजरे तो तमाशबीन बच्चों के गोल उनके पीछे लग लिए।

मुनीर के दोनों लड़के कुत्ते के पिल्ले दबाए हुए साथ थे। हसन का लड़का गिलहरियों का शिकार छोड़कर गुलेल पकड़े भागता हुआ आया था। सिताबी बेवा की लड़की और लड़का भी हैरत से देखते हुए भागे चले आ रहे थे। गनी मिस्त्री की आठ की पलटन रेल-रेल का खेल खेलती हुई बाकायदा पीछे आ रही थी। बच्चों के साथ ही गली के कुत्ते भी भाग-दौड़ कर रहे थे और भौंक रहे थे। पूरी बस्ती के बच्चे उमड़ आये थे। मर्द घरों में नहीं थे। अपने-अपने कामों में या बेकारी में शहर की खाक छान रहे थे। चिकवे तो गोश्त-बाजार में थे, कुछ एक पड़ोस के कस्बे में बकरों के सौदे के लिये गये हुए थे। मिस्त्रियों का जमघट तो अलस्सुबह ही निकल जाता था—कन्नी-बसूली लेकर। बाँसों का कारबार करने वाले जंगलों की तरफ थे। एकाध अपाहिज, दमा और तपेदिक के मरीज बूढ़े घरों के सामने चबूतरों पर खाटें डाले लेटे थे।

साईं भी इस वक्त बस्ती में नहीं था। मौलवी साहब पाठशाला वालों से चल रहे मुकद्दमे की पैरवी के लिए कचहरी में किसी से मिलने चले गये थे।

औरतों की डरी-सहमी हुई निगाहें टाटों के छेदों और किवाड़ों की

आड़ों से इन नये किस्म के आदमियों को देख रही थीं—टोपी तो हिन्दुआनी है, पर नेकर विलायती।

"कौन हैं ये लोग ?"

"लगता है नई तरह की पुलिस बनी है ···उसी बच्चन की तलाश में आई होगी।"

"पर यह हिन्दू पुलिस है।"

"पुलिस के पास बन्दूक होती है।"

"लाठी पुलिस के पास भी होती है।"

"होती होगी।"

तब तक संघी स्वयंसेवक नसीबन के घर पर पहुँच चुके थे। बहुत हिम्मत करके इफ्तिकार और सत्तार भी वहाँ पहुँचे तो रतन ने देखकर भी पहचानने से इनकार किया और टोपी उतार कर, लाठी को दोनों जाँघों के बीच में दबाकर चोटी बाँधने लगा।

संघी स्वयंसेवकों के साथ खद्दर की धोती और कुर्ता पहने हुए एक आदमी भी था। यह आदमी मारवाड़ी अनाथालय का मंत्री था।

रतन ने बढ़कर नसीबन के दरवाजे पर दस्तक दी। नसीबन निकलकर आई तो इतने सारे काली टोपी वालों को देखकर भौंचक्की रह गई। वह कुछ समझ नहीं पाई। रतन ने तभी पूछा, "आपके घर में हिन्दू बच्चे हैं ?"

"क्यों ?"

"हम पता करने आए हैं ?"

"आप कहाँ से आये हैं ?" नसीबन ने पूछा।

"यहीं शहर से ···हम हिन्दू सेवा समिति के लोग हैं। हम हिन्दुओं की सेवा करते हैं।"

नसीबन को अकेला देखकर सत्तार आगे बढ़ आया। नसीबन को पीछे करते हुए उसने रतन से पूछा—"आपका मतलब क्या है ?"

मतलब हम बाद में बतलाएँगे, पहले हमें यह सूचना दीजिये कि इनके यहाँ दो हिन्दू बच्चे हैं ?"

"मान लीजिये हैं, तो ?"

"मान लीजिये का प्रश्न नहीं है। हैं या नहीं ? हाँ या ना में उत्तर दीजिये।"

सत्तार को कच्चा पड़ते देखकर नसीबन ही फिर आगे हो गई, "हाँ, हैं तो।"

"तो उन्हें हमें सौंप दीजिये।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"हमें पता चला है कि आप दो अनाथ हिन्दू बच्चों का धर्म-परिवर्तन करने वाली हैं—यह नहीं हो सकता।"

"क्या धरम···" नसीबन ने जानने के लिये पूछा।

"हाँ, हमने सुना है कि उनके बाप की मौत हो गई है, और आप लोग चुपचाप उन दोनों बच्चों को मुसलमान बना रहे हैं। यह जुर्म है। हमारे साथ अनाथालय के मन्त्री महोदय आये हैं। आप बच्चों को इन्हें सौंप दीजिये और झगड़ा समाप्त कीजिए।" रतन बहुत सँभल-सँभलकर कह रहा था, पर उसके बोलने में गर्व और अधिकार की भावना थी।

"बच्चे किसी अनाथालय में नहीं जाएँगे।" नसीबन ने बहुत साफ-साफ कह दिया था, "हम यह सब झंझट जानते नहीं···रही उनके मुसलमान होने की बात, सो सोलह आने गलत है, बाप उनका जिन्दा है, जब आयेगा तब ले जायेगा।"

"व्यर्थ की बातों के लिए हमारे पास समय नहीं है। हम आपसे अनुरोध करने आये हैं, अगर आप बच्चों को नहीं सौंपेगी तो हम पुलिस को सूचना देंगे और आप सब गिरफ्तार हो जाएँगे···एक आदमी भी नहीं बचेगा।" कहते हुए रतन ने एक हिकारत की नजर सत्तार पर डाली थी।

"आप पुलिस को खबर कर दें।" नसीबन ने दो टूक बात कही तो स्वयंसेवक की मण्डली में कानाफूसी शुरू हो गई और आस-पास जमा बच्चों ने एकदम गुलगपाड़ा मचाना शुरू कर दिया।

सत्तार ने बढ़कर एकाध के चाँटा रसीद कर दिया और बच्चों के गोल चिड़ियों की तरह उड़ गये। शोर मचाते हुए वे गलियों में बिखर गये। उन्हीं के पीछे-पीछे कुत्ते भी भाग गए।

"तो आप बच्चों को अनाथालय के मन्त्री के हाथ सुपुर्द करने को तैयार नहीं हैं ?" रतन ने कुछ क्रोध से पूछा था।

"कैसे कर दूं, काहे को कर दूं ? कल को इनका बाप आएगा तो। यह भी हंसी-ठट्टा है ? अरे बच्चे हैं ये, कोई काठ-किवाड़ तो नहीं जो पड़े रहेंगे वहाँ। खूब रही···" नसीबन भी बिफर उठी थी, "खूब आये आप लोग बच्चे हवाले कर दो। वाह भाई वाह ! जो करना हो करो जाकर···पुलिस नहीं, लफ्टैन को बुला लाओ। हाँ नहीं तो, ऊपर से तुर्रा लेकर आये हैं—मुसलमान बनाया जा रहा है। अरे हम काहे को बनाएँगे किसी को मुसलमान···हमारे क्या बाल-बच्चे नहीं हैं···हाँ नहीं तो—" बड़बड़ाती हुई वह भीतर चली गई और गुस्से में ही उसने किवाड़ लगा लिये।

संघी स्वयंसेवक अपना-सा मुँह लेकर खड़े थे। दाल गलती न देखकर रतन ने बड़े ठसके से कहा, "सत्तार मियाँ, इस औरत को समझाकर कल तक दोनों बच्चों को अनाथालय में पहुँचवा दो, नहीं तो ठीक नहीं होगा।" कह कर उसने जवाब का इन्तजार नहीं किया, अपने साथियों से बोला, "आइए बन्धुओं ! कल तक देखकर पुलिस को सूचना देंगे, यही करना पड़ेगा। शायद, सीधी अँगुलियों से घी नहीं निकलेगा।"

और वे संघी बन्धु कवायद के अन्दाज में पैर उठाते और पेटियाँ टटोलते हुए, जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये।

उनके जाने के बाद बस्ती में और भी सन्नाटा छा गया। शाम के झुटपुटे में जब मर्द लोग वापस आये तो सबसे ताजी-गर्म खबर यही थी। पर इस खबर से बजाय जोश और क्रोध के एक अजीब-सा स्यापा छा गया था। लोग डर-से गये थे। उनके दिलों में दहसत समा गई थी।

* * *

···शहर में भी इस घटना को लेकर भीतर ही भीतर सनसनी फैल गई थी···।

तभी आया सोलह अगस्त सन् छियालिस और शहर में कुछ दबंग

मुसलमानों ने काले झण्डे लेकर जुलूस निकाला—जुलूस में बीस-बाईस लोग ही थे, बाकी भीड़ लड़कों की थी, पर शहर की खास-खास सड़कों पर काले झण्डे लेकर जब मुसलामनों का यह जत्था घूमा और नारे सुनाई पड़े—"हिन्दूराज हाय-हाय ! अँग्रेज पिट्ठू हाय-हाय !" तो लोगों को बड़ा अजीब-सा लगा।

शहर की हिन्दू जनता इस जुलूस को देख-देखकर तरह-तरह की अटकलें लगाती रही। वह जुलूस खानकाह में जाकर खत्म हुआ, जहाँ करीब दो-ढाई सौ मुसलमान जमा थे। खानकाह में जुलूस के नेताओं ने धुआँधार भाषण दिये। यासीन मियाँ ने भी पाकिस्तान की माँग रखी और यह घोषित किया कि मुसलमान और हिन्दू—इन दोनों कौमों की तहजीब, रहन-सहन, खान-पान और मजहब अलग-अलग है। इसलिये एक मुल्क में रहने का सवाल ही नहीं उठता।

जुलूस निकल जाने के बाद फिर वही सन्नाटा छा गया। बड़ा खामोश हंगामा हुआ—भीतर ही भीतर बाहर उसका कोई खास असर नहीं दिखाई दिया। पर मुसलमानों का उत्साह कुछ बढ़ा-बढ़ा जरूर दिखाई देता था।

शहर की दोनों खास सड़कों से जब काले झण्डों वाला जुलूस गुजरा तो कहीं कुछ भी नहीं हुआ। जुलूस के लीडरों को डर था कि कहीं किसी जगह पर हिन्दुओं की तरफ से ईंट-पत्थर न बरसाए जाएँ पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। किसी ने किसी की तरफ अँगुली तक नहीं उठाई और जुलूस के कार्यक्रम में कोई भी बाधा नहीं पड़ी।

हिन्दुओं को डर था कि जुलूस वाले शायद दूकानों को लूट लें या दंगा-फसाद करें···पर यह भी नहीं हुआ। कुछ भी ऐसा नहीं हुआ कि बात बिगड़ती।

किसी ने किसी को गाली तक नहीं दी। किसी ने ढेला तक नहीं फेंका था, किसी के खरोंच तक नहीं आई थी।

पर सुबह होते ही शहर में अफवाहें फैलने लगी थीं—कलकत्ता में हिन्दू-मुसलमानों का दंगा हो गया है। मुसलमानों ने जुलूस निकालने से पहले पूरी तैयारी कर रखी थी····लाखों हिन्दुओं को मौत के घाट उतार

दिया गया है, बच्चों की टाँगें चीर दी गईं और सरेआम हिन्दू औरतों को नंगी करके बेइज्जत किया गया है'''।

जिनके घर रेडियो थे, वहाँ भीड़ें जमा हो गई थीं। सबों के दिल भय और आसन्न संकट से बैठे जा रहे थे।

रेडियो दंगे की खबरें तो ब्राडकास्ट कर रहा था पर कितना बड़ा हंगामा और कत्लेआम हुआ है, इसकी मौखिक रिपोर्टें ही आ रही थीं।

शहर का कोना-कोना भीतर ही भीतर धड़क रहा था ''।

चौबियाने मुहल्ले में लोग शहर के मुसलमानों को काट डालने की बातें कर रहे थे। दफ्तर और बाजार खुले थे पर लोग अपनी-अपनी जातियों और धर्म के अनुसार ही गोलों में खड़े चितापूर्ण बातें कर रहे थे'''।

''बंगाल का मुख्य मन्त्री मुसलमान है न'''वह साला सुहरावर्दी। उसी ने सब कराया है। महीनों पहले से कत्लेआम की तैयारियाँ हुई थीं।''''

दिन भर तरह-तरह की बातें होती रहीं। मुसलमानों के टोलों में कुछ डर भी था और भीतर छुपी हुई खुशी भी। हिन्दू भीतर-ही-भीतर उबल रहे थे ।

बाजार का हाल टेढ़ा था, जहाँ हिन्दुओं की दस दुकानों के बीच किसी मुसलमान की अकेली दुकान थी, तो वह बन्द थी और जहाँ मुसलमानों के बीच किसी एक या दो हिन्दुओं की दुकानें थीं, तो वे भी बन्द थीं।

मुसलमान चूड़ी वाले फेरी लगाने नहीं निकले थे, कपड़े वाले खुदरा फरोश भी नहीं आए थे, ताला-चाबी बनाने या बर्तन कलई करने वालों की आवाजें भी नहीं सुनाई दी थीं।

'''इस भय और आशंका ने लोगों को यहाँ तक डरा दिया था कि कचहरी वाली सड़क पर स्थापित इकलौते गुरुद्वारे में एकाएक भीड़ बढ़ गई थी'''।

ग्रन्थी धड़ाधड़ सिख बना रहे थे। मोती धानुक का लड़का पहला सिख बना था—शहर में। फिर नल वाले नत्थूराम का लड़का दीक्षा ले

आया था और मुहल्ले-भर में कड़ा-परशाद बाँट आया था। सिख बनने का फैशन-सा चल पड़ा था। हर नौजवान हिन्दू करौली बाँधने के लोभ में सिख बनने के लिए तैयार था।

उधर वायसराय के यहाँ पंडित नेहरू ने शपथ ली तो नोआखाली में दंगे भड़क उठे। महात्मा गाँधी कलकत्ता न रुककर नोआखाली पहुँचे पर हिन्दुओं को संतोष नहीं हुआ···।

और इन सबका बदला जब हिन्दुओं ने बिहार में लिया तो खबरें और गर्म हुईं।

इस शहर में बाहर की इन खबरों से फिजा बनती-बिगड़ती रही। संघी स्वयंसेवकों और मुसलमानों के वालेंटियरों की आमदरफ्त बढ़ गई।

पीपलों पर भगवे फहराने लगे और मुसलमानों के घरों पर हरे झण्डे। दीवारों पर तरह-तरह की इबारतें सुबह लिखी मिलने लगीं। हर आदमी के दिल में शंका व्याप्त थी। हर आदमी दूसरे को शक की निगाह से देख रहा था।

दीवारों, जमीनों, गलियों और सड़कों तक का मन ही मन में बँटवारा हो गया। किस हद तक किसका जाना खतरे से खाली था, यह सबने समझ लिया था जैसे शहर में ही हदें बन गयी थीं—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की।

स्कूलों और मदरसों में बच्चों की हाजिरी बहुत गिर गई थी। कोई मुसलमान लड़का हिन्दू मुहल्ले से होकर स्कूल नहीं गया था। हिन्दू लड़के मुसलमानों के मुहल्ले के पास तक नहीं गये थे। बाजारों में दुर्गा, चण्डी, शिवाजी, महाराणा प्रताप, हरी सिंह नलवा और पृथ्वीराज की तस्वीरें और ज्यादा दिखाई देने लगी थीं। पान वालों के यहाँ से फिल्मी सितारों की तस्वीरें उतर गई थीं और उनकी जगह वीर सेनानियों की तस्वीरें लटक गयी थीं।

बचन सिंह ड्राइवर ने अपने ट्रक के पीछे लिखी इबारत—"अच्छा नमस्ते, फिर मिलेंगे' मिटवा कर लिखवा लिया था—"जै दुर्गा माता। जय चण्डी।"

नहर वाले मन्दिर के बूढ़े पुजारी अपने चबूतरे पर बैठे गीता के

श्लोकों को समझा रहे थे और शहर के इकलौते पर्चे में वीर हिन्दुओं की जीवनियाँ छप रही थीं।

तभी पाकिस्तान बनने का एलान हुआ।

शहर के मुसलमान अन्दर ही अन्दर खुश हुए, पर ऊपर से कटे हुए थे···साथ ही उनमें कहीं भय और भी गहरा उतर गया था। पर एकाध सिरफिरों ने तो नासमझी में यहाँ तक एलान कर दिया—"अब बन गया हमारा पाकिस्तान। हिन्दू जाएँ अपने हिन्दुस्तान में। इमली के उत्तर में है हिन्दुस्तान और इधर है पाकिस्तान।"

चिकवों की बस्ती में यासीन ने जशन मनाया था—आखिर कायदे आजम की जीत हुई। एड़ी-चोटी का जोर लगा लिया हिन्दुओं ने, पर पाकिस्तान का बनना नहीं रोक पाये।

मकसूद के दरवाजे पर आधी रात तक ढोलक बजा-बजाकर कव्वालियाँ होती रहीं। लड़कों के लिए अच्छा तमाशा था···सबको यही पता था कि कुछ ऐसा हुआ है जो पहले कभी नहीं हुआ। अब मुसलमानों के दिन लौट आएँगे और गरीबी का जुआ उनकी गर्दन से उतर जाएगा।

और बस्ती में जब बगैर जाने-समझे लोग जशन मना रहे थे तो नसीबन घर में बैठी-बैठी कुढ़ रही थी—"दिमाग खराब हो गया है इन लोगों का। अरे पूछो कोई, क्या बदलेगा। अपना नसीब जो है, वही रहेगा।"

तभी बाहर से आया हुआ एक आदमी संदेश लाया था कि बच्चन ने अपने लड़कों को बुलाया है। नसीबन ने सत्तार को पास बैठाकर मशवरा किया था कि क्या किया जाये।

सत्तार ने सीधे-सीधे सुझाया था, "इससे कह दो कि बच्चन अपने लड़कों को आकर ले जाये।"

"यहाँ आएगा सो पकड़ा जाएगा।"

"जरूर पकड़ा जाएगा, पर अब तुम किस मोह-ममता में पड़ी हो। जो होता है, होने दो, कह दो—आकर अपने बच्चों को ले जाये।"

"वह यहाँ नहीं आएगा ''वहीं बम्बे के किनारे उसने मिलने को कहा है'''" उस आदमी ने कहा था।

"अब यहाँ आएगा किस मुँह से !" नसीबन ने कहा तो सत्तार को कुछ अचम्भा हुआ था। पर वह सत्तार की चिरौरी करते हुए बोली थी—

"सत्तार, तू अपनी जिम्मेदारी पर इन बच्चों को सौंप आ, नहीं तो मुझे कभी चैन नहीं आएगा।"

बहुत मान-मनौवल के बाद सत्तार तैयार हो गया था।

"हम रात को बच्चों को लेकर आएँगे, वहीं बम्बे की पुलिया पर— बच्चन से कह देना, समझे।" कहकर सत्तार ने संदेश वाहक को बिदा कर दिया था।

'''दिन भर नसीबन बहुत उदास रही। रात को जब सत्तार दोनों बच्चों को लेकर चलने लगा तो नसीबन ने एक पोटली उसके हाथ में थमाई थी, "यह भी बच्चन को दे देना'''।"

"उसके जेवर हैं ?"

"हाँ।"

सत्तार एक क्षण अपलक उसे देखता रह गया था, "इतनी बेइज्जती के बाद भी लौटा रही हो।"

"चीज तो उसी की है।"

"इसमें तो रुपये भी लगते हैं।" सत्तार ने टटोलते हुए पूछा था।

"हाँ, कुछ चाँदी के रुपये हैं।"

"उसी के हैं ?"

"हैं तो अपने, पर विपदा में घिरा है बेचारा'''इधर चोरी छुपे रहते हुए काम धाम भी नहीं कर पाया होगा, ऊपर से बच्चे जा रहे हैं, कुछ जरूरत भी तो पड़ेगी उसे'''कह देना, अपने समझकर ही खर्च कर ले। कोई बात मन में न लाये।"

सत्तार कुछ कह नहीं पाया था, कुछ भी कहते हुए जैसे वह अपनी नजरों में अब बहुत छोटा हुआ जा रहा था।

सत्तार के लौटने तक नसीबन सोई नहीं थी। खैरियत पूछ-पाछ कर

वह लेट तो गई, पर नींद नहीं आ रही थी। आखिर ढिबरी जलाकर वह चर्खा कातने लगी थी।

सत्तार की जब भी नींद उचटी, तो उसने नसीबन को जागते और कुछ सोचते ही पाया। और ऐसे ही रात कट गई थी।

* * *

सुबह से ही वातावरण कुछ-कुछ उनींदा और अलसाया-सा था।

चारों तरफ जो कुछ हो रहा या हुआ था, वह उसकी समझ में बिल्कुल नहीं आ रहा था। न तो वह नसीबन को ही समझ पा रहा था और न चारों तरफ उबलते हुए माहौल को।

उसके लिए कोई और ठिकाना भी नहीं था—सिवा इफ्तिकार की कोठरी के। वहीं पहुँचा तो इफ्तिकार ने कहा—"भई अपन तो पाकिस्तान जा रहे हैं।" सत्तार चुपचाप देखता रह गया।

"किसके साथ ?"

"अपने इक्के घोड़े के साथ। यहाँ से इक्का जुतेगा और पाकिस्तान जाकर खुलेगा।" इफ्तिकार ने कहा और हँसने लगा।

"हम कहाँ जाएँ ?"

"तुम भी चलो इक्के पर। जगह की क्या कमी है। चाहो तो अपनी सलमा को भी ले लो।" कहते हुए इफ्तिकार ने आँख मारी।

"लेकिन एकाएक पाकिस्तान जाने की बात···।"

"बात यह है कि घोड़ा भी साला हिन्दू हो गया है। कल से ये सीधे मुँह बात ही नहीं करता। अब क्या किया जाये ? और कोई चारा नहीं है।"

बच्चों के शोर से उनका ध्यान बँट गया।

पाकिस्तान बनने की खुशी में मौलवी साहब ने एक दिन की छुट्टी बच्चों को दी थी। बच्चे टोलियाँ बनाये, शोर मचाते हुए इधर-उधर दौड़-भाग रहे थे। और मकसूद ने उन्हें एक नारा दिया—पाकिस्तान जिन्दाबाद ? कायदे आजम जिन्दाबाद।"

और वे बच्चे कतार बाँधकर गलियों में घूमते हुए बड़े जोश से यह नारा लगाते रहे। नसीबन मुर्गियों को दरबे में बन्द करते हुए बच्चों को निहार रही थी•••उसकी आँखों में असीम ममता थी उन बच्चों के लिए•••और शायद अपने लिए गहरा सन्नाटा•••।

बस्ती के सभी लोग यह नजारा देखते रहे। जब बच्चों का जुलूस लौटकर मकतब के पास पहुँचा तो मकसूद ने सबको एक-एक मीठी गोली दी थी।

मुनीर के लड़के बशीर और शमशीर कुत्ते के पिल्ले दबाकर भाग गए थे। हसन का लड़का बिल्लू अपनी गुलेल लेकर गिलहरियों के शिकार पर चला गया था। गनी मिस्त्री की आठ की पलटन भी बिखर गई थी•••।

लेकिन शहर में कोई जुलूस नहीं निकला था।

किसी ने नारे नहीं लगाये थे।

वैसे हिन्दुओं को लग रहा था कि पाकिस्तान बनने की खुशी में मुसलमान कुछ न कुछ करेंगे, पर शहर में पत्ता तक नहीं खड़का।

★ ★ ★

सब कुछ अपनी जगह पर था—पर कुछ था जो नहीं था। गलियों के छोटे-छोटे घरों में बैठे सुनार जेवर गढ़ रहे थे। तालाबों में कमल फूले हुए थे। जलमंजरी के पत्ते नागों की तरह फन उठाए हुए खड़े थे। जंगल में कमरख और आँवले फले थे।

झाड़ियों में मधुमक्खियों के छत्ते अब नहीं थे, पर मन्दिरों के आँगनों में कनेर अब भी फूले हुए थे और मस्जिदों के सहन में मेंहँदी महक रही थी।

पर वातावरण में आशंकाएँ रेंग रही थीं•••

एक भयानक खौफ लोगों के दिलो-दिमाग पर हावी था•••।

विभाजन हुआ तो पंजाब में खून की नदियाँ बहीं•••बंगाल में मार-

काट हुई। सूबे के बड़े शहरों में कत्ल हुए और बस्तियाँ जलाकर राख कर डाली गईं…।

पर इस शहर में एक बूंद खून नहीं गिरा। किसी मुहल्ले पर धावा नहीं हुआ। किसी ने किसी को नहीं मारा। किसी ने किसी को गाली तक नहीं दी। मस्जिदों में लड़ाई की तैयारियाँ नहीं हुईं, मन्दिरों में ईंट-पत्थर इकट्ठे नहीं हुए, जो बदमाश रोज पिटते थे, उन्हें भी किसी ने नहीं पीटा।

लेकिन भीतर ही भीतर एक भूचाल आया हुआ था—जिससे बस्ती की चूलें हिल रही थीं। दिली इमारतें ढह रही थीं। एक उबलता हुआ नफरत का दरिया नीचे ही बह रहा था…शक और डर सबके दिलों में समाए हुए थे।

दूसरे शहरों, कस्बों और सूबों से तरह-तरह की खौफनाक खबरें आ रही थीं—हर सुबह एक नयी खबर होती—हर शाम एक और नया डर होता।

ठहरी-ठहरी शामें थीं और वक्त जैसे रुका हुआ था। कोई किसी से कुछ नहीं कहता था। एक अजीब-सा तनाव था दोनों तरफ।

सुबह होती, फिर उदास-सी शाम उतर आती। मुसलमानों का कारोबार ठप्प हो गया था। जिन्दगी जैसे रुक गई थी।

तभी और खबरें आई थीं—

अलीगढ़ से मुसलमानों का एक जत्था पुलिस की देख-रेख में रेल से लाहौर जा रहा है—पाकिस्तान।

अहमदाबाद के मौलवी साहब और उनका पूरा घराना कल ही कराँची के लिए रवाना हो गया—पाकिस्तान।

कोसमा के जमींदार अब्दुल हक साहब का घराना कल लाहौर जा रहा है—पाकिस्तान।

पाकिस्तान जाने वाले हर मुसलमान के लिए जिन्ना साहब की सरकार ने पूरा इंतजाम किया है। पाकिस्तान जाने वालों के लिए जिन्ना साहब ने अपनी फौज भेजी है जो उन्हें हिन्दुओं के इलाकों से बाहिफाजत निकाल ले जाएगी…।

तभी यासीन ने एक तूफानी दौरा किया था—"गाँधी की बातों पर यकीन मत कीजिए। वह चाहता है कि मुसलमानों को यहीं रोककर बाद में मरवा डाला जाये। यह फरेब है। पाकिस्तान बना ही इसीलिए है कि हर मुसलमान वहाँ आराम और चैन से रहे। सारे इंतजामात पूरे हो गये हैं। हवाई जहाज दिल्ली के अड्डे पर इंतजार कर रहे हैं···पाकिस्तान की सरहद पर ही जमीनें और जायदादें बँट रही हैं, काम-धन्धे शुरू करने के लिए जिन्ना साहब की सरकार नकद रुपये दे रही है। अंगूर आठ आने सेर बिक रहा है···"

आसपास कस्बों से पुराने मुसलमान जमींदारों के घरानों की खबरें भी आती रहीं—बेदगाँव के सैयद साहब भी आज चले गये।

अटाला के हकीम जी भी चले गये।

शहर कोतवाल ने हिन्दुस्तान की नौकरी छोड़कर पाकिस्तान जाने का तय किया है। डिप्टी कलक्टर खान साहेब भी इस्तीफा देकर अपने शहर गाजीपुर गये हैं, वहाँ के हवाई जहाज से वे करांची जा रहे हैं—करांची यानी पाकिस्तान।

और उस शाम हाफिज जी जब अपनी दुकान का सामान लदवाकर घर की तरफ चले, तो शर्बत वाले संता ने उन्हें गौर से देखा। हाफिज जी ने मुस्कराकर दूर से ही सलाम किया और बोले, "खाली नहीं कर रहा हूँ।"

पर सुबह एक मोटर में सारा सामान भर कर हाफिज जी अपने बाल-बच्चों समेत निकल गये। घर एक दर्जी को सौंप गये। किसी को पता नहीं चला कि हाफिज जी कब और क्यों चले गये।

सभी गरीब मुसलमानों की निगाहें अमीर लोगों की तरफ लगी थीं—जो वे करेंगे, वही ठीक होगा।

एकाएक कुछ चेहरे शहर से गायब हो गये···वे चेहरे जो चुंगी में लोगों की रहनुमाई करते थे, स्कूल की कमेटियों में बहस करते थे। तहसील-कचहरियों में पैरवी करते थे···।

माजिद साहब की कोठी के बाहर के पौधे सूखने लगे तो पता चला कि चार दिन हुए वे भी पाकिस्तान चले गये। गुलाम-नबी मोटर वालों

का पता ही नहीं चला…उनकी मोटरें वैसे ही धूल उड़ाती हुई जसराना लाइन पर दौड़ती रहीं, पर बाद में मालूम हुआ कि वे अपनी मोटरें, और हवेली एटा के मारवाड़ी के हाथ बेचकर चुपचाप चले गये।

कुछ चेहरे थे जो शाम तक हँसते-मुस्कराते दिखाई पड़ते थे पर सुबह बगैर सलाम बन्दगी के खो जाते थे।

सहसा कुछ घरों में रात में रोशनी नहीं हुई तो लगा कि खाली हो गये।

शहर की कुछ दुकानों के पटरों पर तीन-तीन, चार-चार दिनों का कूड़ा जमा दिखाई दिया तो मालूम हुआ कि वे सौदागर भी चले गये।

जितने भी पैसे वाले थे, वे जल्दी से जल्दी अपना इंतजाम करके चले गये। गरीबी का कोई रहनुमा नहीं था। चिकवों की बस्ती में लोगों का यही खयाल था कि यासीन भी अलीगढ़ गया है, और वहाँ से लाहौर चला गया होगा। पर दस रोज बाद ही यासीन लौट आया और उसने बताया, "भई, काम और भी थे लाखों की तादाद में लोगों को चलना है। उनका इंतजाम भी तो होना था।"

* * *

और एक रात चिकवों की बस्ती के बाशिन्दों की यात्रा का प्रबंध हुआ।

सब कुछ खामोशी और चुपके-चुपके हुआ।

शाम को तय हो गया था कि परसों सबेरे, सूरज उगने से पहले यहाँ से काफिला निकल पड़ेगा—और यासीन उन्हें दिल्ली स्टेशन पर मिलेगा, वहाँ से रेलों या हवाई जहाजों द्वारा उन्हें पाकिस्तान पहुँचाया जाएगा…

निश्चित दिन तीन बजे रात को ही दस घरानों का एक काफिला ब·ती से रवाना हुआ—अपना सामान, चीज-वस्त और बाल-बच्चों को लेकर…।

"खुदा हाफिज।"

आँसू, दुख और घरों को छोड़ने की तकलीफ़।

सिसकियाँ दूर-दूर तक सुनाई देती रही थीं…मोह तोड़कर वे लोग निकल तो गये थे, पर घरों को ऐसे छोड़ गये थे, जैसे वे कभी वापस आयेंगे।

रात अँधेरी थी और स्टेशन वाला रास्ता सुनसान था। सबों ने पैसे जुटाकर तीन बैलगाड़ियाँ किराये पर ली थीं, जो उन्हें जंकशन तक पहुँचाकर वापस आयेगी। अपने स्टेशन से गाड़ी में बैठना ठीक नहीं—यह यासीन ने ही बताया था।

सुबह नसीबन मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठी-बैठी उन वीरान घरों को देखती रही, जिनके वाशिन्दे चले गये थे….आसमान उदास था और पजावों के पीछे आज हद से ज्यादा सन्नाटा छाया हुआ था।

उस दिन लोगों के पास बात करने के लिए भी कुछ नहीं बचा था। सत्तार निढाल-सा घर में पड़ा था और इफ्तिकार अपनी कोठरी में बैठा घोड़े के घुँघरू बजा-बजाकर कुछ गा रहा था। बहुत देर तक नसीबन उन उजड़े हुए घरों को देखती रही फिर उससे अपनी आँखें सुखाई और सीढ़ियों से उतर कर घर चली आई। बस्ती में ऐसी भयानकता छाई हुई थी जैसे दस-बीस मौतें एक साथ हो गई हों। दोपहरी सायँ-सायँ करती रही।

दोपहर बाद सत्तार उठा था, घड़े से पानी पीकर जरा ठीक हुआ तो नसीबन से बोला था, "कल मैं भी जा रहा हूँ।"

"अच्छा।"

फिर बहुत देर चुप्पी छाई रही।

कुछ आहट हुई तो सत्तार ने देखा—इफ्तिकार खड़ा था। धीरे से भीतर जाकर वह बोला, "सलमा ने तुझे बुलाया है…।"

"कहाँ ?"

"मस्जिद के पास, यहाँ वह नहीं आना चाहती।"

सत्तार उठकर चला गया। इफ्तिकार बैठा रहा पर नसीबन से कोई बात ही नहीं हुई। आखिर इफ्तिकार ने ही खामोशी तोड़ी थी—"तुम जा रही हो….।"

"कहाँ जाऊँगी ?"

"जहाँ और सब जा रहे हैं ।"

नसीबन हँस दी थी । उसकी हँसी में कोई अर्थ नहीं था ।

★ ★ ★

रात गये तक सत्तार लौटकर नहीं आया । नसीबन को घर और भी काटने लगा और सबेरा होने से पहले बाकी घरों का काफिला भी उसी रास्ते चला गया, जिस रास्ते पहला गया था । सलमा और मकसूद भी पाकिस्तान चले गये थे…।

जाने से पहले दो बजे रात सलमा नसीबन से मिलने आई थी और दबी जुबान उसने यह भी पूछा था कि सत्तार घर पर है या नहीं ? नसीबन ने बता दिया था कि वह उसी से मिलने के बाद फिर घर नहीं आया ।

सलमा आँसू नहीं रोक पाई थी, "मैंने तो यहाँ तक कहा था—हमारे साथ ही चलो…पर वह माना नहीं, कहने लगा, वहीं जाकर क्या मिल जाएगा । और नाराज होकर चला गया…कहता था, मैं बच्चे को अपना कहूँगा पर तू यहीं रुक जा…बताओ न बुआ, ऐसा भी कहीं होता है ?" वह मेरी मजबूरियाँ नहीं समझता । कैसे रुकना हो सकता है यहाँ…।"

और रात ढलने से पहले बाकी घरानों का काफिला भी चल पड़ा था । बाकी घर भी अँधेरे हो गये थे ।

नसीबन ने इफ्तिकार से कहा था, "अब तो रोशनी की गिनती कर लो…पूरी बस्ती में तीन जगह रोशनी है…साईं के यहाँ, तेरे और मेरे यहाँ…चौथा रोशन घर तो दिखाई नहीं देता । मस्जिद तो उसी दिन से वीरान पड़ी है, जब से पहला काफिला गया है…।"

"सभी रंजीदा थे ।" इफ्तकार बोला ।

"आखिर घर-बार छोड़कर गये हैं ।…कई-कई पुश्तों के नार यहीं गड़े हैं…ऐ खुदा " और वह बुदबुदाती हुई चुप हो गई थी ।

तभी थका-हारा-सा साईं आया था, "शहर भी वीरान हो गया है···बड़ा आदमी तो कोई दिखाई नहीं देता···अरे हाँ, उधर मस्जिद के पास बड़ी बदबू आ रही है। लगता है कोई जानवर सड़ रहा है···वहाँ तो बदबू भरी हुई है, यहाँ भी लगती है, नहीं।"

हल्की हवा के साथ कुछ-कुछ बदबू आ रही थी।

★ ★ ★

सुबह जब बदबू और बढ़ गई तो इफ्तकार ने मस्जिद के आस-पास चक्कर लगाया। साईं ने भी इधर-उधर देखा-भाला, पर कहीं कुछ नहीं था।

पर मौअज्जन की कोठरी का दरवाजा खोलते ही बदबू का भभका आया था और एक चमगादड़ पंख फड़फड़ाता हुआ निकलकर मस्जिद के गुम्मद से जा चिपका।

पुलिस आकर सत्तार की लाश को उतार ले गई थी। फिर पता नहीं, उसका क्या हुआ। कोतवाली में दो बार साईं और इफ्तिकार को जाना पड़ा था, थोड़ी-बहुत तहकीकात हुई थी, और सत्तार की लाश को शायद लावारिश बताकर, चीर-फाड़ के बाद दफना दिया गया था।

इसी बीच इफ्तिकार भी अपना इक्का जोतकर और घोड़े के पैरों में फिर से घुंघरू बाँधकर, मय अपने बोरिया-बिस्तर के कहीं चला गया था।

चिराग अब सिर्फ दो रह गये थे—साईं और नसीबन के। और उनके इर्द-गिर्द था गहरा अँधेरा, जो शाम से ही काटने को दौड़ने लगता था। सब बियाबान हो गया था···तांत के सितार पर उठने वाले गीत डूब गये थे और अपनों चेहरे खो गये थे।

सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।

गरीबी, अपमान, भूख और बेबशी में भी वे हारे नहीं थे, पर नफरत की आग और शंकापूर्ण भय का धुआँ वे बर्दाश्त नहीं कर पाये और उनके काफिले एक अनजान देश की ओर चले गये।

और तब से इतने बरस गुजर गये—यहाँ कोई नहीं आया—सिवा इफ्तिकार के! शुरू में तो पता नहीं चला कि वह कहाँ चला गया है···

तीसरे बरस देवियों के मेले पर कमाई करने के लिए जब इफ्तिकार अपना इक्का लेकर आया था, तो एक रात इस बस्ती की तरफ भी पहुँचा था—यह देखने कि कोई निशान बाकी है या नहीं।

तब उसे नसीबन मिली थी।

"तुम नहीं गईं।" इफ्तिकार ने पूछा था।

"कहाँ जाती···मैं समझती थी कि तुम पाकिस्तान चले गये···अब कहाँ हो ?" नसीबन ने पूछा था।

"मैं तो सत्तार की मौत से घबराकर भाग गया था··आजकल हाथरस में हूँ। सोचा, मेले पर चार पैसे भी मिल जाएँगे और देखता भी आऊँगा···मन में मलाल तो है ही यह शहर छोड़ने का····" इफ्तिकार ने कहा था।" फिर वह अपने आप ही बताने लगा था, "अरे अपने वह गनी मिस्त्री थे न···।"

"वो तो लाहौर चला गया।" नसीबन ने बात काटकर कहा।

"लाहौर-वाहौर कहीं नहीं, वे फिरोजाबाद में वक्त काट रहे हैं, वहीं हैं बाल-बच्चों समेत। वहीं रोजनदारी पर काम करके जैसे-तैसे पेट भर रहे हैं। इफ्तिकार ने बताया तो हल्की-सी आत्मीयता की चमक नसीबन के चेहरे पर दौड़ गई थी।

"गनी मिस्त्री तो शायद पहले काफिले में गया था····" उसने याद किया।

"गनी ही बता रहे थे कि उनके साथ का कोई भी दिल्ली तक नहीं पहुँच पाया···सब इधर-उधर बिखर गये। सुबराती मोची आगरा में राजामण्डी के चौराहे पर बैठता है···और चमन वहीं की चुंगी में चपरासी लग गया है···रमजानी का हाल बहुत बुरा बता रहे थे, वह बेचारा भूखों मर रहा है···।" इफ्तिकार ने औरों के बारे में भी खबरें दी थीं।

"यहाँ तो काम अच्छा-खासा जमा हुआ था, रमजानी का।" नसीबन ने कहा तो इफ्तिकार बोला, "भई जो कुछ धेला-कौड़ी पास थी, वह तो जाने में खर्च कर दी थी···वह भी पूरी नहीं पड़ी, नहीं तो पाकिस्तान नहीं पहुँच जाते···अब रोटियों के भी लाले पड़ गये हैं।"

"कैसे मनहूस दिन थे।" नसीबन के आँखों के सामने दो बरस पहले की रातें नाच रही थीं। इफ्तिकार बहुत देर तक दुनिया-जहान की बातें

करता रहा था, फिर अपने अड्डे पर लौट गया था।

इफ्तिकार बरस-दो-बरस बाद मेले पर आता तो खबरें भी लाता और मेल-मुलाकात भी कर जाता। उसके इतने-इतने दिन बाद आने से सूनापन और भी बढ़ जाता था…।

और नसीबन हर दिन उन ढहते हुए घरों को देखती। काफिला के जाने के कुछ ही दिनों बाद सबसे पहले टाट के पर्दे सड़-सड़कर गिर गये थे और पहली ही बरसात में तीन-चौथाई से ज्यादा कोठरियों और घरों की छतें बैठ गई थीं। धीरे-धीरे लकड़ी की चौखटें वगैरह फूल-फूल कर चटख गई थीं और सड़कर खोखली हो गई थीं। उनके दरारों में कुकुरमुत्ते और घास उग आई थी…।

कच्चा दीवारें नोना खा-खाकर पतली हुईं, फिर ढह पड़ी थीं। जिन घरों में पक्की ईंटों का एक भी रद्दा लगा हुआ था, वे कुछ देर और टिकी रही थीं, फिर उनकी ईंटें भी सफेद पड़कर झरने लगी थीं…।

बस्ती के बच्चे ईंटों के इस रेत को जमा करने के लिए कितना लड़ा करते थे…।

कच्चे आँगनों में कमर-कमर तक आवारा घास उग आई थी और टूटी हुई हाँड़ियों, घड़ों वगैरह के टुकड़े जैसे के तैसे बिखरे पड़े थे। कई दीवारों में चिरागों के काले पड़े हुए ताख अब भी दिखाई पड़ते थे।

जगह-जगह टूटी हुई चूड़ियों के टुकड़े, सड़े हुए गूदड़ और जंग खाए टीन के पुराने डिब्बे पड़े हुए थे।

बीतते हुए बरसों के साथ और भी निशान मिटते जा रहे थे। दीवारें फूल कर गिरीं तो सिर्फ मकानों की हदों का अहसास भर रह गया था।

★ ★ ★

नये निजाम में कुछ नई बातें भी हो रही थीं। पर यह किस्सा वैसा ही पड़ा हुआ था। पजावों की वजह से जगह-जगह जमीन जली हुई पड़ी थी, मिट्टी जहाँ थी, वहाँ भी ईंटें थापने से खाइयाँ बन गई थीं… धरती किसी काम की नहीं रह गई थी।

पर नसीबन और साईं वहीं थे। नसीबन जाती भी कहाँ ?

इतने बरसों में उनके लिए कुछ भी नहीं बदला था। कभी साईं नसीबन के पास आ बैठता तो पुरानी बातें छिड़ जातीं। अब साईं भी दुखी था और किसी हद तक अपनी गलती मन ही मन स्वीकार चुका था।

अँधेरा हो रहा था। साईं आ बैठा था, बोला, "इतने बरस होने को आये नसीबन, लेकिन इधर कोई नहीं आया। अब बच्चन भी भला क्या आयेगा।"

बूढ़ी नसीबन ने सिर्फ हुँकारी भरी।

साईं ने फिर कहा, "नसीबन ! सब तो चले गये, आदमी और आदमजात। नई सड़क क्या बनी, यह सड़क भी वीरान हो गई···बस्ती उजड़नी थी, उजड़ गई···अब तो मन बहुत भटकता है। अब तू तो नहीं चली जायेगी कहीं ? यह धरती भी···।"

नसीबन ने बात काट दी, "साईं, धूल उड़ जाती है, मिट्टी उठ सकती है, धूल-मिट्टी का क्या ?" कहते-कहते वह हँस दी थी। जब भी वह इस तरह हंसती, साईं चुप रह जाता था।

बरसों से यही होता आ रहा है···।

उजड़ी हुई इस बस्ती से दूर-दूर तक का दृश्य दिखाई पड़ता है··· अब भी सब कुछ वैसा ही··· अब भी दूर पर धान मिलों की पतली चिमनियों से रेंगता हुआ धुआँ आसमान के नीलेपन में वैसे ही खो जाता है···सुलगते हुए पजावे हैं और हैं पकी हुई ईंटों की कतारें···उनके पीछे गाँव और हरे-भरे मैदान, छतनार पेड़। उधर दलदल की ओर से सारसों की तेज आवाज अब भी आती है· जलपक्षियों के झुण्ड अब भी उसी तरह इस उजाड़ बस्ती के ऊपर से होकर गुजरते हैं और फिर उनके झुण्ड दलदल और मैदानों पर झुकते नजर आते हैं।

इतने बरस हो गये···अब भी मैदान वाली मठिया पर वही झण्डा बदरंग होकर फहरा रहा है। बाँस टेढ़ा हो गया है और झण्डा फट गया है—वह किसी हारे हुए योद्धा का निशान-सा लगता है।

सिर्फ एक ही नई चीज होती दिखाई पड़ती है—पाकिस्तान बनने

के बारह-चौदह बरस बाद एक दिन कुछ अंग्रेज से लगने वाले लोग हिन्दुस्तानी साहबों के साथ इधर बस्ती में कुछ जाँच-पड़ताल के लिए आये थे।

उनके साथ के चपरासी भाग-भागकर काम कर रहे थे। पैमाइश के लिए फीता भी उनके पास था। जब अंग्रेज-से लगने वाले लोग चलने लगे थे तो नसीबन ने एक चपरासी को रोककर पूछा था, "यह क्या हो रहा है? कौन लोग हैं ये?"

चपरासी ने बताया था, "ये लोग जर्मनी के इंजीनियर लोग हैं।··· यहाँ पातालतोड़ कुएँ खोदे जाएँगे, उसी के लिए जगह की तलाश हो रही है।"

तब नसीबन ने साईं से कहा था, "तब तो इधर कुछ रौनक हो जाएगी, शायद यह वीरान बस्ती फिर आबाद हो जाये।"

और कुछ ही दिनों के बाद बड़ी-बड़ी मशीनें आयी थीं और धरती में जगह-जगह पाइप घुसाकर पानी की तलाश की गई थी। फिर पता ही नहीं चला कि क्या हुआ। कोई लौटकर इधर नहीं आया।

करीब आठ-दस महीनों के बाद उधर स्टेशन-पार बंजर में एक बस्ती उभरती हुई नजर आने लगी थी।

उस ऊसर में जो बहुत बरसों से उजाड़ पड़ा था और जहाँ कँटीली झाड़ियों के अलावा और कुछ नहीं था, जहाँ धरती के तन पर जगह-जगह सफेद चकत्ते पड़े हुए थे और ठूँठ उगे थे···रेह-मिट्टी बटोरने के लिए धोबी जहाँ के चक्कर लगाया करते थे।

बरसात के बाद जब धूप चटकती थी और धरती में दरारें पड़ जाती थीं तो उस बस्ती के सब बच्चे उस ऊसर में जाया करते थे और छतरीदार सफेद कुकुरमुत्ते बीनते और लड़ते-झगड़ते थे।

उसी ऊसर में जिन्दगी के चिह्न दिखाई देने लगे थे। जर्मनी कारीगरों ने उसी ऊसर में डेरा डाला था और तरह-तरह की मशीनें वहाँ लगाई थीं, जर्मनी ने जेनरेटर लगाकर बिजली की रोशनी भी कर ली थी। दिन-रात वहाँ चहल-पहल रहती।

पातालतोड़ कुओं का काम करने के लिए एक बहुत बड़ा द्विवीज

बना था, जिसके लिए हजारों मजदूरों की जरूरत पड़ी थी। बड़ी रौनक रहती वहाँ'''जब भी नसीबन का मन डूबता, वह उधर ही ताकने लगती और उसे वे दिन याद आते, जब वह बस्ती के बच्चों को खोजती हुई वहाँ जाया करती थी'''बच्चे कुकुरमुत्ते, सिगरेट की खाली डिब्बियाँ और पन्नियाँ बीनकर लाया करते थे, वह रेवड़ का रेवड़ हाँक कर लाती थी, "चल तेरी हड्डी कुटवाती हूँ तेरे अब्बा से।" वह दाँत किटकिटाती हुई फत्ते से कहती थी, बबुआ के कान मरोड़ देती थी। बाकर को धौल जमाती थी, मुनीर और शमशीर को डराती-धमकाती आती थी। लेकिन बच्चों पर कोई असर नहीं होता था।

विभाजन के वक्त और उसके पहले की सिर्फ यादें रह गई थीं''' और जिन्दगी अपनी रफ्तार से चलती जा रही थी।

लगभग सभी की खबरें मिल जाती थीं''''पाकिस्तान जाने के जोश में जो घराने काफिलों के साथ गए थे'''वे सभी गरीबों के थे, और उनको गरीबी ही आड़े आ गई थी।

यहाँ, इस बस्ती से तो वे उखड़ गए थे पर गरीबों ने उनकी टाँगें जकड़ ली थीं, और वे सूबे के पश्चिमी जिलों तक पहुँचकर अटक गए थे। सूबे की सरहद तक पार नहीं कर पाये थे।

गरीबों को कोई पाकिस्तान नहीं ले गया था'''।

और अब भी अकेली नसीबन वही सब सोचती रहती है और चुपचाप बैठी रहती है। जब से ऊसर आबाद हुआ और जिले में मजदूरों की रोजी चमकी है तब से कुछ एक लोगों की आमाद-रफ्त उधर शुरू हुई है'''।

नसीबन साईं के पास बैठी थी'''शाम गहरी हो रही थी। नसीबन की आँखें वहीं सामने लगी हुई थीं'''और वह अपने में घुटी-घुटी यही सोच रही थी कि बिजली और नई-नई भारी मशीनों के साथ यह कैसी जिन्दगी लौट रही है। यह नई जिन्दगी कैसी होगी? क्या यह वैसी ही बेफिक्री और मस्ती की जिन्दगी होगी? क्या गरीबी भी वैसी ही रहेगी?

फिर उसे लगा कि अगर एक और जिन्दगी आती भी है तो क्या? होगी भी, तो क्या?

सामने ऊसर में बिजली की बत्तियों को वह एकटक ताकती रही। तभी उसने देखा—वीरान सड़क पर सात-आठ छायाएं चली आ रही थीं, वे इधर बस्ती की तरफ ही आ रही थीं, पर अंधेरे के कारण साफ-साफ दिखायी नहीं दे रहा था।

वह एकटक देखती रही—

नहीं, वे सात-आठ आदमी इधर ही आ रहे थे···पर फिर मन का संशय सिर उठाकर बोला था—अब कौन इधर आएगा और क्यों आएगा। इस उजाड़ बस्ती की तरफ, और फिर इस वक्त···वे राहगी होंगे, अपने रास्ते चले जाएँगे···।

यह सोचकर उसके मन की उदासी और बढ़ गई, सूनापन और भी गहरा गया···।

सड़क पर वे आदमी चलती-फिरती लाटों की तरह बढ़ते आ रहे थे। उनके पीछे वहाँ ऊसर से राउटियों के इर्द-गिर्द चहल-पहल थी। कुछेक मोटरें खड़ी हुई थीं और चलती हुई मशीनों की अनवरत घबराहट की आवाज यहाँ तक धीमी-धीमी आ रही थी जैसे धरती हलके-हलके सिहर रही हो।

अंधेरा होते हुए भी उन आदमियों के पास आने के कारण चेहरे कुछ-कुछ साफ हो रहे थे। सुलगती हुई बीड़ियों की चिनगारियाँ और धुआँ भी दिखाई पड़ने लगा था।

सड़क के पास वे आदमी रुक गए। इमली के छतनार पेड़ की काली छाया में वे एकाएक घुल-मिल गए। उन्होंने कुछ क्षण वहाँ रुककर कुछ तय किया—वहीं से इस बस्ती की ओर सड़क से रास्ता कटता है···।

नसीबन धीरे से बोली, "साईं, लगता है, ये आदमी इधर ही आ रहे हैं।"

"रास्ता भूल गए होंगे···यहाँ रोशनी देखकर पूछने आ रहे हैं शायद।" कहते हुए वह भी उधर ही ताकने लगा।

और दो-तीन मिनट के बाद ही वे आठों आदमी वहीं, उनके पास आकर रुक गए···सभी जवान थे···सबके बदन लोहे की तरह ठोस और भरे हुए थे···।

"इधर कोई मस्जिद है ?" एक ने पूछा था।

"हाँ है।" कहते हुए नसीबन उठकर खड़ी हो गई और पूछा, "कहाँ से आए हो तुम लोग ?"

"इधर हमारे मकान थे···हम यहाँ पातालतोड़ कुओं के महकमे में मजदूरी करने आए हैं···आज ही हमारी भर्ती हुई है। अब रहने का ठौर-ठिकाना देख रहे हैं। इधर हमारे पुराने।····"

नसीबन की आँखों में चमक भर गई और उसका बदन खुशी से थर-थराने लगा, "इधर तुम्हारे घर थे अरे तू बशीर तो नहीं ? लगता तो वैसा ही है ?···"

और मिनट-भर में ही सारी पहचानें उभर आई थीं···उन्हीं गए हुए और बिखर गए घरानों के बच्चे अब मजदूरी करने के लिए फिर लौटे थे···और अपने पुराने घरों की जगह खोज रहे थे···चलते वक्त उनके अब्बा या घरवालों ने बताया था—"उधर अपने घर हैं···।"

नसीबन खुशी से रो पड़ी थी—वे सब बच्चे बशीर, बाकर, रमजानी, फत्ते वगैरह जवान हो-होकर लौटे थे। नसीबन उन्हें अपने साथ ले गई थी···उन निशानों के पास जो अब भी बाकी थे, "यही तेरे अब्बा का घर था,···बशीर यहीं बैठकर वह चमड़ा कमाया करता था, और बाकर बेटे···वह देख रहा है न···उसी के नीचे जो टूटी हुई दीवार है···वह तेरा घर था···और वो घर और वह ढहा हुआ चबूतरा रमजानी के चाचा का है।"

"नसीबन बुआ ! अब तो रात गुजारनी है कल से अपने घरों को ठीक करेंगे।" फत्ते ने अँगुलियाँ चटकाते हुए कहा था।

नसीबन दौड़कर घर गई थी और जो भी मिला था, उठा लाई थी—बोरा, फटी दरी, मैली चादर वगैरह···और बोली, "लो इन्हें यहीं पेड़ के नीचे बिछा लो और आराम करो।"

और सुबह तक के लिए रात उसी पेड़ के नीचे कट गई थी।